

व्याख्याकार :

विजय मुनि शास्त्री, साहित्य रत्न

प्रकाशक :

मन्मति ज्ञान पीठ, आगरा

मुद्रक :

प्रेम प्रिंटिंग प्रेस, आगरा

प्रथम प्रवेश :

सन १९६०

मूल्य :

पञ्चान नये पैसे

पच्चीस बोल : एक

मू  
ल्  
यां  
क  
न

— सुबाध मुनि

० 'जैन दर्शन' के मूल भूत मिद्धान्तो का ज्ञान करने वाले प्रत्येक व्यक्ति का माक्षात्कार सर्व प्रथम इसी लघुतम ग्रन्थ से होता है। यही वह सूत्रात्मक ग्रन्थ है, जिसको हृदयंगम कर, दर्शन शास्त्र की गहराई में उतरा जाता है, और इसी के माध्यम से आगम ग्रन्थों के विशाल सागर को पार किया जाता है।

० इस दृष्टि से यह लघुतम ग्रन्थ प्रर्याप्त मूल्यवान है। इस ग्रन्थ की व्याख्या अब तक प्राप्त नहीं थी। अतः कोमल मति बालको को इस का रहस्य समझने में, बड़ी असुविधा थी इस व्याख्या से उक्त समस्या का हल हो गया—एक सुन्दर रूप थी।

० मेरा विश्वास है, इस मूल भूत ग्रन्थ में व्याख्या लिखकर श्री विजय मुनि जी ने तत्त्व जिज्ञासुओं का काफी उपकार किया है। व्याख्या शैली सुन्दर, सरस और सरल है। इसमें बालक से लेकर वृद्ध तक सभी लाभ उठा सकते हैं।

## प्रकाशक की ओर से

'पच्चीस बोल' को नये रूप में, पाठको के हाथों-में समर्पित करते हुए हमें महान् हर्ष है। यह एक लघु, पर साथ ही महत्वपूर्ण सिद्धान्त ग्रन्थ है। सन्त और गृहस्थ प्रायः सभी इसको याद करते हैं। शास्त्र के गुरु गम्भीर ज्ञान को समझने के लिए पच्चीस बोल एक चाबी है।

लाला मकखनलाल जी हमारी समाज के एक अनुभवी एवं वयोवृद्ध श्रावक हैं। आपकी यह बहुत दिनों से अभिलाषा थी, कि पच्चीस बोल पर एक लघु व्याख्या भी हो, जो सरल एवं सुबोध भाषा में हो। आप ने अपनी यह भावना उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्द्र जी महाराज की सेवा में व्यक्त की। फलतः उपाध्याय श्री जी महाराज ने अपना स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण यह कार्य अपने सुयोग्य शिष्य विजय मुनि जी को करने का आदेश दिया।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन में लाला मकखनलाल जी ने जो अर्थ सहायता की है, इसके लिए हम लाला जी का सस्था की ओर में धन्यवाद करते हैं। आशा है, भविष्य में भी उनकी ओर में हमें इस प्रकार की सहायता मिलती रहेगी।

प्रस्तुत पुस्तक पाठशाला, विद्यालय और स्कूल के छात्रों को ध्यान में रखकर लिखी गई है। छात्र एवं छात्राएँ यदि इस पुस्तक को पढ़कर अपने ज्ञान की वृद्धि करेंगे, तो हमारा यह प्रयत्न सफल होगा।

मंत्री—सोनाराम जैन

श्री जवाहर विद्यापीठ  
भीनासर (बीकानेर)

पुस्तक क्रमांक 617

विषय ११-८

पच्चीस बोल

[ मूल ]



१

बोल पहला : गति चार

- |              |              |
|--------------|--------------|
| १ नरक गति    | ३ मनुष्य गति |
| २ तिर्यच मति | ४ देव गति    |

★

२

बोल दूसरा : जाति पांच

- |                     |                     |
|---------------------|---------------------|
| १ एकेन्द्रिय जाति   | ३ त्रीन्द्रिय जाति  |
| २ द्वीन्द्रिय जाति  | ४ चतुरिन्द्रिय जाति |
| ५ पञ्चेन्द्रिय जाति |                     |

★

३

बोल तीसरा : काय छह

- |              |               |
|--------------|---------------|
| १ पृथ्वी काय | ४ वायु काय    |
| २ अप् काय    | ५ वनस्पति काय |
| ३ तेजस् काय  | ६ त्रस काय    |

★

४

बोल चौथा : इन्द्रिय पांच

- |   |                  |   |                  |
|---|------------------|---|------------------|
| १ | श्रोत्र इन्द्रिय | ३ | घ्राण इन्द्रिय   |
| २ | चक्षुष् इन्द्रिय | ४ | रसन इन्द्रिय     |
|   | ५                |   | स्पर्शन इन्द्रिय |

★

५

बोल पाँचवाँ : पर्याप्ति छह

- |   |               |           |
|---|---------------|-----------|
| १ | आहार          | पर्याप्ति |
| २ | शरीर          | पर्याप्ति |
| ३ | इन्द्रिय      | पर्याप्ति |
| ४ | श्वासोच्छ्वास | पर्याप्ति |
| ५ | भाषा          | पर्याप्ति |
| ६ | मन            | पर्याप्ति |

★

६

बोल छठा : प्राण दश

- |   |                  |          |
|---|------------------|----------|
| १ | श्रोत्र इन्द्रिय | बल प्राण |
| २ | चक्षुष् इन्द्रिय | बल प्राण |

- ३ घ्राण इन्द्रिय बल प्राण  
 ४ रसन इन्द्रिय बल प्राण  
 ५ स्पर्शन इन्द्रिय बल प्राण  
 ६ मनो - बल प्राण  
 ७ वचन बल प्राण  
 ८ काय बल प्राण  
 ९ श्वासोच्छ्वास-बल प्राण  
 १० आयुष्य बल प्राण

★

७

बोद्ध सातवाँ : शरीर पांच

- १ औदारिक शरीर  
 २ वैक्रिय शरीर  
 ३ आहारक शरीर  
 ४ तैजस शरीर  
 ५ कार्मण शरीर

★



## त्रोल श्राठवॉ : योग पन्द्रह

### चार मन के

- १ सत्य मनो - योग
- २ असत्य मनो - योग
- ३ मिश्र मनो - योग
- ४ व्यवहार मनो - योग

### चार वचन के

- १ सत्य वचन - योग
- २ असत्य वचन - योग
- ३ मिश्र वचन - योग
- ४ व्यवहार वचन- योग

### सात काय के

- १ औदारिक काय - योग
- २ औदारिक-मिश्र काय - योग
- ३ वैक्रिय काय - योग
- ४ वैक्रिय-मिश्र काय - योग
- ५ आहारक काय - योग
- ६ आहारक-मिश्र काय - योग
- ७ कर्मण काय - योग



## बोल नौवाँ . उपयोग वारह

### पाँच ज्ञान

- |   |             |            |                  |
|---|-------------|------------|------------------|
| १ | मति ज्ञान   | ३          | अवधि ज्ञान       |
| २ | श्रुत ज्ञान | ४          | मनः पर्याय ज्ञान |
|   | ५           | केवल ज्ञान |                  |

### तीन अज्ञान

- |   |                          |
|---|--------------------------|
| १ | मति अज्ञान               |
| २ | श्रुत अज्ञान             |
| ३ | अवधि अज्ञान (विभग ज्ञान) |

### चार दर्शन

- |   |                |   |            |
|---|----------------|---|------------|
| १ | चक्षुर् दर्शन  | ३ | अवधि दर्शन |
| २ | अचक्षुर् दर्शन | ४ | केवल दर्शन |



## त्रोल दशवो : कर्म आठ

१	ज्ञानावरण	कर्म
२	दर्शनावरण	कर्म
३	वेदनीय	कर्म
४	मोहनीय	कर्म
५	आयुष्	कर्म
६	नाम	कर्म
७	गोत्र	कर्म
८	अन्तराय	कर्म



## त्रोल ग्यारहवो : गुण-स्थान चौदह

१	मिथ्या दृष्टि	गुण स्थान
२	सास्वादन सम्यग्दृष्टि	गुण स्थान
३	सम्यग्-मिथ्यादृष्टि	गुण स्थान
४	अविरत सम्यग्दृष्टि	गुण स्थान
५	देश-विरत	गुण स्थान
६	प्रमत्त सयत	गुण स्थान

७	अप्रमत्त सयत्	गुण स्थान
८	निवृत्ति बादर-सम्पराय	गुण स्थान
९	अनिवृत्ति बादर-सम्पराय	गुण स्थान
१०	सूक्ष्म-सम्पराय	गुण स्थान
११	उपशान्त-मोह	गुण स्थान
१२	क्षीण-मोह	गुण स्थान
१३	सयोगी केवली	गुण स्थान
१४	अयोगी केवली	गुण स्थान



१२

बोल बारहवाँ : पाँच इन्द्रियों के तेईस विषय

श्रोत्र इन्द्रिय के तीन विषय

- |   |          |            |           |
|---|----------|------------|-----------|
| १ | जीव शब्द | २          | अजीव शब्द |
|   | ३        | मिश्र शब्द |           |

चक्षुष् इन्द्रिय के पाच विषय

- |   |            |            |           |
|---|------------|------------|-----------|
| १ | कृष्ण वर्ण | ३          | रक्त वर्ण |
| २ | नील वर्ण   | ४          | पीत वर्ण  |
|   | ५          | श्वेत वर्ण |           |

घ्राण इन्द्रिय के दो विषय

- |   |        |   |          |
|---|--------|---|----------|
| १ | सुगन्ध | २ | दुर्गन्ध |
|---|--------|---|----------|

## रसन इन्द्रिय के पाच विषय

१ अम्ल रस	३ कटु रस
२ मधुर रस	४ कषाय रस
५ तिक्त रस	

## स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषय

१ शीत स्पर्श	५ लघु स्पर्श
२ उष्ण स्पर्श	६ गुरु स्पर्श
३ रूक्ष स्पर्श	७ मृदु स्पर्श
४ स्निग्ध स्पर्श	८ कर्कश स्पर्श

★

१३

### बौल तेरहवों : दश प्रकार का मिथ्यात्व

१	जीव	को	अजीव	समझना	मिथ्यात्व
२	अजीव	को	जीव	समझना	मिथ्यात्व
३	धर्म	को	अधर्म	समझना	मिथ्यात्व
४	अधर्म	को	धर्म	समझना	मिथ्यात्व
५	साधु	को	असाधु	समझना	मिथ्यात्व
६	असाधु	को	साधु	समझना	मिथ्यात्व

- ७ ससारमार्ग को मोक्षमार्ग समझना मिथ्यात्व  
 ८ मोक्षमार्ग को ससारमार्ग समझना मिथ्यात्व  
 ९ मुक्त को अमुक्त समझना मिथ्यात्व  
 १० अमुक्त को मुक्त समझना मिथ्यात्व

★

१४

बोल चौदहवाँ : नव तत्त्व के ११५ भेद

नव तत्त्व

- |                |                  |
|----------------|------------------|
| १ जीव तत्त्व   | ५ आस्रव तत्त्व   |
| २ अजीव तत्त्व  | ६ सवर तत्त्व     |
| ३ पुण्य तत्त्व | ७ निर्जरा तत्त्व |
| ४ पाप तत्त्व   | ८ बन्ध तत्त्व    |
| ९ मोक्ष तत्त्व |                  |

जीव तत्त्व के चौदह भेद

- |                                |
|--------------------------------|
| १ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त  |
| २ सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त |
| ३ बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त     |

४	वादर	एकेन्द्रिय	अपर्याप्त
५		द्वीन्द्रिय	पर्याप्त
६		द्वीन्द्रिय	अपर्याप्त
७		त्रीन्द्रिय	पर्याप्त
८		त्रीन्द्रिय	अपर्याप्त
९		चतुरिन्द्रिय	पर्याप्त
१०		चतुरिन्द्रिय	अपर्याप्त
११	असजी	पञ्चेन्द्रिय	पर्याप्त
१२	असजी	पञ्चेन्द्रिय	अपर्याप्त
१३	सजी	पञ्चेन्द्रिय	पर्याप्त
१४	सजी	पञ्चेन्द्रिय	अपर्याप्त

अजोत्र तत्त्व के चौदह भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद

१	स्कन्ध	२	देश
		३	प्रदेश

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद

१	स्कन्ध	२	देश
		३	प्रदेश

## आकाशास्ति काय के तीन भेद

१ स्कन्ध २ देश

३ प्रदेश

१ दशवा काल

## पुद्गलास्ति काय के चार भेद

१ स्कन्ध ३ प्रदेश  
२ देश ४ परमाणु

## पुण्य तत्त्व के नव भेद

१ अन्न पुण्य ५ वस्त्र पुण्य  
२ पान पुण्य ६ मन पुण्य  
३ स्थान पुण्य ७ वचन पुण्य  
४ शय्या पुण्य ८ काय पुण्य  
९ नमस्कार पुण्य

## पाप तत्त्व के अठारह भेद

१ प्राणातिपात ४ मैथुन  
२ मृषावाद ५ परिग्रह  
३ अदत्तादान ६ क्रोध



७	मान	१३	अभ्याख्यान
८	माया	१४	पैशुन्य
९	लोभ	१५	पर-परिवाद
१०	राग	१६	रति-अरति
११	द्वेष	१७	मायामृपा
१२	कलह	१८	मिथ्यादर्शन

### शास्त्रव तत्त्व के बीस भेद

#### पाच अन्नत

१	प्राणातिपात	३	अदत्तादान
२	मृपावाद	४	मैथुन
	५	परिग्रह	

#### पाच इन्द्रिय

१	श्रोत्र	इन्द्रिय - प्रवृत्ति
२	चक्षुष्	इन्द्रिय - प्रवृत्ति
३	घ्राण	इन्द्रिय - प्रवृत्ति
४	रसन	इन्द्रिय - प्रवृत्ति
५	स्पर्शन	इन्द्रिय - प्रवृत्ति

## पाच आस्रव

- १ मिथ्यात्व आस्रव
- २ अविरति आस्रव
- ३ प्रमाद आस्रव
- ४ कषाय आस्रव
- ५ अशुभ योग आस्रव

## तीन योग

- १ मन - प्रवृत्ति
- २ वचन - प्रवृत्ति
- ३ काय - प्रवृत्ति

## दो अयतना

- १ भाण्डोपकरण, अयतना से लेना, रखना ।
- २ सूचि कुशाग्रमात्र, अयतना से लेना, रखना ।

## संवर तत्त्व के बीस भेद

### पाच व्रत

- १ प्राणातिपात - विरमण
- २ मृषावाद - विरमण

- ३ अदत्तादान - विरमण  
 ४ अब्रह्मचर्य - विरमण  
 ५ परिग्रह - विरमण

### पाच इन्द्रिय

- १ श्रोत्र इन्द्रिय - निग्रह  
 २ चक्षुष् इन्द्रिय - निग्रह  
 ३ घ्राण इन्द्रिय - निग्रह  
 ४ रसन इन्द्रिय - निग्रह  
 ५ स्पर्शन इन्द्रिय - निग्रह

### पाच सवर

- १ सम्यक्त्व सवर  
 २ विरति संवर  
 ३ अप्रमाद सवर  
 ४ अकपाय सवर  
 ५ शुभ योग सवर

### तीन योग

- १ मनो - निग्रह  
 २ वचन - निग्रह  
 ३ काय - निग्रह

## दो यतना

- १ भाण्डोपकरण, यतना से लेना, रखना ।
- २ सूचि कुशाग्र मात्र, यतना से लेना, रखना ।

### निर्जरा तत्त्व के बारह भेद

- १ अनशन तप
- २ ऊनोदरी तप
- ३ भिक्षाचरी तप
- ४ रस-परित्याग तप
- ५ काय क्लेश तप
- ६ प्रति सलीनता तप
- ७ प्रायश्चित्त तप
- ८ विनय तप
- ९ वैयावृत्य तप
- १० स्वाध्याय तप
- ११ ध्यान तप
- १२ व्युत्सर्ग तप

### बन्ध तत्त्व के चार भेद

- १ प्रकृति बन्ध
- २ स्थिति बन्ध

- ३ अनुभाग बन्ध  
४ प्रदेश बन्ध

### मोक्ष-तत्त्व के चार भेद

- १ सम्यग् ज्ञान                      ३ सम्यक् चारित्र  
२ सम्यग् दर्शन                    ४ सम्यक् तप

★

१५

### त्रोल पन्द्रहवों : आत्मा आठ

- १ द्रव्य                      आत्मा  
२ कपाय                    आत्मा  
३ योग                      आत्मा  
४ उपयोग                    आत्मा  
५ ज्ञान                      आत्मा  
६ दर्शन                      आत्मा  
७ चारित्र                    आत्मा  
८ वीर्य                      आत्मा

★

## बोल सोलहवाँ : दण्डक चौबीस

### सात नरक का एक दण्डक

१	रत्न	प्रभा
२	शर्करा	प्रभा
३	वालुका	प्रभा
४	पङ्क	प्रभा
५	धूम	प्रभा
६	लम	प्रभा
७	महातम	प्रभा

### दश भवन-पति के दश दण्डक

१	असुर	कुमार
२	नाग	कुमार
३	सुपर्ण	कुमार
४	विद्युत्	कुमार
५	अग्नि	कुमार
६	द्वीप	कुमार
७	उदधि	कुमार
८	दिशा	कुमार

- ६ पवन कुमार  
 १० स्तनित कुमार

पांच स्थावर के पांच दण्डक

- १ पृथ्वी काय  
 २ अप् काय  
 ३ तेजस् काय  
 ४ वायु काय  
 ५ वनस्पति काय

तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक

- १ द्वीन्द्रिय  
 २ त्रीन्द्रिय  
 ३ चतुरिन्द्रिय

अन्तिम पांच दण्डक

- १ तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का एक दण्डक  
 १ मनुष्य का एक दण्डक  
 १ व्यन्तर देव का एक दण्डक  
 १ ज्योतिष देव का एक दण्डक  
 १ वैमानिक देव का एक दण्डक

★

१७

बोल सतरहवाँ : लेश्या छह

- १ कृष्ण लेश्या
- २ नील लेश्या
- ३ कापोत लेश्या
- ४ तेजो - लेश्या
- ५ पद्म लेश्या
- ६ शुक्ल लेश्या

★

१८

बोल अठारहवाँ : दृष्टि तीन

- १ सम्यग्दृष्टि
- २ मिथ्यादृष्टि
- ३ मिश्र दृष्टि

★



## बोल उन्नीसवाँ : ध्यान चार

- १ आर्त ध्यान
- २ रौद्र ध्यान
- ३ धर्म ध्यान
- ४ शुक्ल ध्यान

✽

२०

## बोल बीसवाँ - पड़ द्रव्य के तीस भेद

धर्मास्तिकाय के पाँच बोल

- १ द्रव्य मे एक
- २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,  
अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी ।
- ५ गुण से चलन गुण,  
जल मे मछली का दृष्टान्त

अधर्मास्ति काय के पाँच बोल

- १ द्रव्य से एक
- २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण

- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,  
अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी,
- ५ गुण से स्थिर गुण,  
श्रान्त पथिक को छाया का दृष्टान्त

### आकाशास्ति काय के पांच बोल

- १ द्रव्य से एक
- २ क्षेत्र से लोकालोक-प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,  
अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोका-लोक-व्यापी,
- ५ गुण से अवकाश-दान गुण,  
दूध में बताशे का दृष्टान्त

### काल द्रव्य के पांच बोल

- १ द्रव्य से एक
- २ क्षेत्र से अढाई द्वीप प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,  
अरूपी, अजीव, शाश्वत, अढाई द्वीप-वर्ती

- ५ गुण से वर्तना गुण,  
नये को पुराना करे,  
नये पुराने कपड़े का दृष्टान्त

### जीवास्तिकाय के पाच बोल

- १ द्रव्य से अनन्त
- २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,  
अरूपी, जीव, शाश्वत, लोकवर्ती
- ५ गुण से उपयोग गुण,  
चन्द्र की कला का दृष्टान्त

### पुद्गलास्तिकाय के पाच बोल

- १ द्रव्य से अनन्त
- २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित  
रूपी, अजीव, शाश्वत, लोकवर्ती
- ५ गुण से पूरण-मलन-गुण,  
मिलते-बिखरते बादल का दृष्टान्त



## बोल इक्कीसवाँ : राशि दो

- १ जीव राशि
- २ अजीव राशि



## बोल बाईसवाँ : श्रावक के बारह व्रत

### पाच अणुव्रत

- |   |            |          |
|---|------------|----------|
| १ | अहिंसा     | अणु व्रत |
| २ | सत्य       | अणु व्रत |
| ३ | अस्तेय     | अणु व्रत |
| ४ | ब्रह्मचर्य | अणु व्रत |
| ५ | अपरिग्रह   | अणु व्रत |

### तीन गुण व्रत

- १ दिशा व्रत
- २ भोगोपभोग-परिमाण व्रत
- ३ अनर्थ-दण्ड-विरमण व्रत

## चार शिक्षा व्रत

- १ मामाधिक व्रत
- २ देशावकाशिक व्रत
- ३ पीपव व्रत
- ४ अतिथि सविभाग व्रत

★

२३

बोल तेईंमवों : माधु के पाँच महाव्रत

- १ अहिंसा महाव्रत
- २ सत्य महाव्रत
- ३ अस्तेय महाव्रत
- ४ ब्रह्मचर्य महाव्रत
- ५ अपरिग्रह महाव्रत

★

२४

बोल चौथीमवों : ग्रन्थाख्यान के ४६ भंग

- अंक ११ भंग नव—एक करण, एक योग से कथन
- |   |      |       |        |
|---|------|-------|--------|
| १ | कर्म | नहीं, | मन से  |
| २ | कर्म | नहीं, | वचन से |
| ३ | कर्म | नहीं, | काय से |

४	कराऊँ नहीं,	मन से
५	कराऊँ नहीं,	वचन से
६	कराऊँ नहीं,	काय से
७	अनुमोदूँ नहीं,	मन से
८	अनुमोदूँ नहीं,	वचन से
९	अनुमोदूँ नहीं,	काय से

अक १२ भग नव—एक करण दो योग से कथन

१	करूँ नहीं,	मन से,	वचन से
२	करूँ नहीं,	मन से,	काय से
३	करूँ नहीं,	वचन से,	काय से
४	कराऊँ नहीं,	मन से,	काय से
५	कराऊँ नहीं,	मन से,	वचन से
६	कराऊँ नहीं,	वचन से,	काय से
७	अनुमोदूँ नहीं,	मन से,	वचन से
८	अनुमोदूँ नहीं,	मन से,	काय से
९	अनुमोदूँ नहीं,	वचन से,	काय से

अक १३ भग तीन—एक करण तीन योग से कथन

१	करूँ नहीं	मन से,	वचन से,	काय से
२	कराऊँ नहीं,	मन से,	वचन से,	काय से
३	अनुमोदूँ नहीं,	मन से,	वचन से,	काय से

अक २१ भग नव-दो करण एक योग से कथन

- १ कर्ण नहीं, कराऊँ नहीं, मन से
- २ कर्ण नहीं, कराऊँ नहीं, वचन से
- ३ कर्ण नहीं, कराऊँ नहीं, काय से
- ४ कर्ण नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
- ५ कर्ण नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
- ६ कर्ण नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से
- ७ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
- ८ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
- ९ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से

अक २२ भग नव-दो करण दो योग से कथन

- १ कर्ण नहीं, कराऊँ नहीं, मन से, वचन से
- २ कर्ण नहीं, कराऊँ नहीं, मन से, काय से
- ३ कर्ण नहीं, कराऊँ नहीं, वचन से, काय से
- ४ कर्ण नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से
- ५ कर्ण नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, काय से
- ६ कर्ण नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से, काय से
- ७ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से
- ८ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, काय से
- ९ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से

अक २३ भग तीन—दो करण तीन योग से कथन

- १ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं,  
मन से, वचन से, काय से
- २ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं,  
मन से, वचन से, काय से
- ३ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं,  
मन से, वचन से, काय से

अक ३१ भग तीन—तीन करण एक योग से कथन

- १ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
- २ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
- ३ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से

अक ३२ भग तीन—तीन करण दो योग से कथन

- १ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं,  
मन से, वचन से
- २ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं,  
मन से, काय से
- ३ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं;  
वचन से, काय से



अक ३३ भ ग एक-तीन करण, तीन योग से कथन  
१ कसँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही  
मन से, वचन से, काय से

✱

२५

बोल पच्चीसवाँ : चारित्र पांच

- १ सामायिक चारित्र
- २ छंदोपस्थापन चारित्र
- ३ परिहार विशुद्धि चारित्र
- ४ नूक्षम सपराय चारित्र
- ५ यथाख्यात चारित्र

✱

पञ्चोस बोल

[ व्याख्या ]



## बोल पहला : गति चार

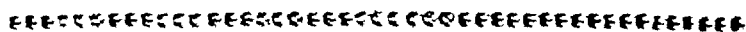
- |                |              |
|----------------|--------------|
| १ नरक गति      | ३ मनुष्य गति |
| २ तिर्यञ्च गति | ४ देव गति    |

### व्याख्या

संसार में अनन्त जीव हैं। साधारण व्यक्ति के लिए सबको जानना और वर्णन कर सकना सम्भव नहीं है। केवली-भगवान् ही अपने अनन्त ज्ञान से अनन्त जीवों को जान-देख सकते हैं। अल्पज्ञ जीव में वैसा सामर्थ्य नहीं है, कि वह समस्त जीवों को जान सके, देख सके। क्योंकि अल्पज्ञ जीव के पास ज्ञान का साधन है—इन्द्रिय। इन्द्रियो द्वारा सूक्ष्म और अतीन्द्रिय पदार्थों को जाना नहीं जा सकता।

फिर, एक अल्पज्ञ आत्मा जीवों का परिज्ञान कैसे करे? शास्त्रकार ने इसी प्रश्न के समाधान के लिए अनन्त जीवों का चार विभागों में वर्गीकरण कर दिया है। संसार के समग्र जीव इसमें समाहित हो जाते हैं। संसारस्थ एक भी जीव ऐसा नहीं रहता जो इस बोल में न आ जाता हो।

लोक-भाषा में गति का अर्थ है—गमन, चलना-फिरना। एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना। परन्तु यहाँ पर गति का



एक विशेष पारिभाषिक अर्थ ग्रहण किया गया है। एक भव मे दूसरे भव की प्राप्ति को गति कहा गया है। जब एक आत्मा मनुष्य-भव के आयुष्य को पूर्ण करके देव-भव मे जाने को प्रस्थान करता है तो उस क्षण से लेकर जब तक वह देव-भव मे रहता है, तब तक की वह अवस्था-विशेष देव-गति कहलाती है। इसी प्रकार मनुष्य गति, तिर्यञ्च गति और नरक गति के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

'नाम-कर्म' की उत्तर प्रकृतियों मे, 'गति-नाम' एक प्रकृति है। उस गति-नाम कर्म के उदय से जीव कभी नरक में, कभी तिर्यञ्च में, कभी मनुष्य मे और कभी देव योनि मे जन्म ग्रहण करता है। अतः ये सब संसारो जीव की अशुद्ध पर्याय है, जो गति नाम कर्म के उदय से होती रहती है। शुद्ध दृष्टि से जीव, केवल शुद्ध जीव है, नारक आदि नहीं।

जैन दर्शन में, आत्मा के दो रूप माने गए हैं—मुक्त और समारस्य। मुक्त आत्मा वह है, जो कर्मों से रहित हो चुका है। वह शुद्ध है, निरञ्जन है, मल-रहित है। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्मा को सिद्ध कहते हैं। जो एक बार संसार में मुक्त हो गया, वह फिर कभी संसार मे नहीं आता। मुक्त एवं सिद्ध आत्माएँ अनन्त है और अनन्त होगी।

परन्तु जो आत्माएँ अभी तक कर्म-बन्धनों मे बद्ध हैं, वे अशुद्ध हैं, कर्म-बन्धित हैं, मल-गहिन हैं। शास्त्रकार इन प्रकार की आत्माओं को समारस्य कहते हैं। प्रस्तुत बोल मे इन्हीं संसारो आत्माओं का वर्णन किया गया है। संसारो आत्माएँ चार ही प्रकार की हो सकती हैं—नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव।





\*\*\*\*\*

सस्कृति और सभ्यता के आघार पर भी मनुष्यो के भेद किये गये हैं। जंसे कि आर्य और म्लेच्छ। मनुष्य भी मर कर प्राय चारो गतियो मे जा सकता है।

### देव

देव शब्द भारतीय सस्कृति एव साहित्य मे चिरपरिचित है। देवगति में सुख माना गया है। वहाँ शुभ लेश्या और शुभ परिणाम माने गए है। वहाँ प्राय सातावेदमीय कर्म का उदय माना गया है।

देवो के चार भेद है—भवन पति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। देव मरकर न देव हो सकता है और न नारक। किन्तु अपने शुभाशुभ कर्मों के कारण मनुष्य या तिर्यञ्च गति मे जन्म ले सकता है।

### गतियों के कारण

सक्षेप मे नरक गति के कारण हैं—महारम्भ, महापरिग्रह। तिर्यञ्च गति का कारण है—माया। मनुष्य गति का कारण है—अल्पारम्भ, अल्पपरिग्रह। देव गति का कारण है—स्राग-संयम, सयमासयम—श्रावकत्व बालतप, और अकाम निर्जरा आदि।









नाम कर्म को उत्तर प्रकृतियों में, जाति नाम कर्म भी एक प्रकृति है। उसके उदय से ही जीवों को एकेन्द्रिय आदि में जन्म ग्रहण करना पड़ता है।

- एकेन्द्रिय जीव—पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति ।
- द्वीन्द्रिय जीव—लट, सीप; गख, कृमि, घुण आदि ।
- त्रीन्द्रिय जीव—चीटी, चीचड, जू , लीख, मकोडा आदि ।
- चतुरिन्द्रिय जीव—मक्खो, मच्छर, भवरा, विच्छू आदि ।
- पंचेन्द्रिय जीव—नारक, पशु आदि, मनुष्य, देव ।



३

बोल तीसरा : काय छह

- |              |               |
|--------------|---------------|
| १ पृथ्वी काय | ४ वायु काय    |
| २ अप् काय    | ५ वनस्पति काय |
| ३ तेजस काय   | ६ त्रस काय    |

व्याख्या

विभिन्न प्रकार के पुद्गलो से बने शरीरों के द्वारा जीव के जो विभाग होते हैं, उन्हें काय कहते हैं।

पृथ्वी है काय जिन की, वे जीव पृथ्वी काय हैं। अप् (जल) है काय जिनकी, वे जीव अप् काय । तेजस् (अग्नि) है काय जिन



EEEEEEEEE

अप् काय—वर्षा का जल, ओस का जल, गढे का पानी, कुवा-बावडी का पानी, ताल-भील व नदी का पानी आदि सब अप्कायिक जीव है ।

तेजस्काय—भाड की अग्नि, झाल की अग्नि, वास की अग्नि, उल्का-पात आदि सब तेजस्कायिक जीव हैं ।

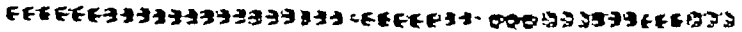
वायु काय—उत्कलिका वायु, मण्डलिका वायु, घन वायु, गुञ्जा वायु आदि सब वायु-कायिक जीव हैं ।

वनस्पति काय—वृक्ष, लता, कन्द, मूल आदि वनस्पति काय है । इसके दो भेद हैं—साधारण और प्रत्येक ।

साधारण वनस्पति—जहाँ एक शरीर में अनन्त जीव वास करते हो, उसे साधारण वनस्पति-काय कहते हैं । कन्द, मूल, आलू, मूली, अदरक आदि अनन्तकायिक साधारण वनस्पति है ।

प्रत्येक वनस्पति—जिस के एक शरीर में एक जीव हो । लता, बेल, लृण, वृक्ष आदि प्रत्येक वनस्पति हैं । क्योंकि इनमें प्रत्येक जीव अपने शरीर का स्वतन्त्र स्वामी है ।

त्रस काय—द्विन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक के सभी जीव त्रस काय हैं ।



४

## बोल चौथा : इन्द्रिय पाँच

- |                   |                 |
|-------------------|-----------------|
| १ श्रोत्रेन्द्रिय | ३ घ्राणेन्द्रिय |
| २ चक्षुरिन्द्रिय  | ४ रसनेन्द्रिय   |
| ५ स्पर्शनेन्द्रिय |                 |

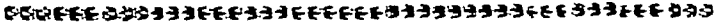
व्याख्या

समस्त ससारी जीवों में समान इन्द्रियाँ नहीं होती हैं। किसी में एक, किसी में दो, किसी में तीन, किसी में चार और किसी में पाँच। किसी जीव में पाँच से अधिक इन्द्रिय नहीं हो सकती। क्योंकि इन्द्रियाँ पाँच ही हैं। यहाँ पर इन्द्रियों के आधार पर ससारी जीवों का वर्गीकरण किया गया है।

आत्मा को इन्द्र कहते हैं, क्योंकि वह ज्ञानादि ऐश्वर्य से सम्पन्न है। इन्द्र जिसे चिन्ह से जाना जाता है, अथवा जो इन्द्र के ज्ञान का साधन है, उसे इन्द्रिय कहा गया है, और वे संख्या में पाँच हैं—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षुष्, और श्रोत्र।

श्रोत्र—जिस इन्द्रिय से शब्द का ज्ञान किया जाता है, सुना जाता है, वह श्रोत्र इन्द्रिय है, अर्थात् कर्ण—Sense of hearing (Ears)

चक्षुष्—जिस इन्द्रिय में रूप का ज्ञान किया जाता है, देखा जाता है, वह चक्षुष् इन्द्रिय है, अर्थात् नेत्र—Sense of sight (Eyes)



घ्राण—जिस इन्द्रिय से गन्ध का ज्ञान किया जाता है, सूँघा जाता है, वह घ्राण इन्द्रिय है, अर्थात् नाक—Sense of smell (Nose)

रसन—जिस इन्द्रिय से रस का ज्ञान किया जाता है, अर्थात् स्वाद लिया जाता है, वह रसन इन्द्रिय है, अर्थात् जिह्वा—Sense of test (Tongue)

स्पर्शन—जिस इन्द्रिय से स्पर्श का ज्ञान किया जाता है, वह स्पर्शन इन्द्रिय है, अर्थात् त्वचा—Sense of Touch

इन्द्रियो की तरह मन भी ज्ञान का साधन है, फिर इस को इन्द्रिय क्यों नहीं माना गया ? मन ज्ञान का साधन अवश्य है, परन्तु फिर भी रूप आदि विषयो मे प्रवृत्त होने के लिए मन को चक्षु आदि इन्द्रियों का सहारा लेना पडता है। यद्यपि मन स्वतन्त्र रूप से भी अपने चिन्त्य विषय को ग्रहण करता है, फिर भी अधिकतर मन का कार्य इन्द्रियो द्वारा गृहीत विषय का चिन्तन करना मात्र है। अतः उसे इन्द्रिय न मान कर अनिन्द्रिय ( इन्द्रिय जैसा ) कहा गया है।

यद्यपि मन पशु और पक्षी आदि मे भी होता है, तथापि मन की सब से विकसित अवस्था मनुष्य मे देखी जाती है। क्योंकि मनुष्य का नाडी-तन्त्र Nervous system दृष्ट दूसरे प्राणियो की अपेक्षा अधिक विकसित है। मनुष्य मे Mental power अन्य प्राणियो से श्रेष्ठ है।

मनोविज्ञान के अनुसार मन के तीन भाग हो सकते हैं—  
चेतन मन conscious, चेतनोन्मुख Pre-conscious और  
अचेतन Un-conscious

\*\*\*\*\*

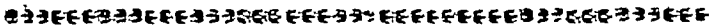
चेतन मन, मन का वह भाग है, जिस में मन की समस्त ज्ञात क्रियाएँ चला करती हैं। चलना, फिरना, बोलना, लिखना, पढ़ना और सोचना आदि क्रियाओं का नियन्त्रण चेतन मन करता है।

चेतन मन के परे चेतनोन्मुख मन है। वे वे भावनाएँ, स्मृतियाँ, इच्छाएँ तथा वेदनाएँ रहती हैं, जो प्रकाशित नहीं हैं, किन्तु वे चेतना पर आने के लिए तत्पर हैं।

चेतनोन्मुख मन के परे अचेतन मन है। विचार तथा भावनाएँ न हमें ज्ञात रहती हैं; और न सहज भाव से बाहर ही आती हैं। प्रयत्न-विशेष में ही वे चेतना स्तर पर आती हैं।

शास्त्र में मन के दो भेद हैं—द्रव्य और भाव। द्रव्य मन पुद्गलमय होने से जड़ है—और भाव मन चेतनमय, क्योंकि भाव मन ज्ञानावरण का एक क्षयोपशम-विशेष है।





५

### बोल पाँचवाँ : पर्याप्ति छह

- |                      |                           |
|----------------------|---------------------------|
| १ आहार पर्याप्ति     | ४ श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति |
| २ शरीर पर्याप्ति     | ५ भाषा पर्याप्ति          |
| ३ इन्द्रिय पर्याप्ति | ६ मन पर्याप्ति            |

व्याख्या

पर्याप्ति आत्मा की एक शक्ति-विशेष है। आत्मा जिस शक्ति से पुद्गलो को ग्रहण करता है और उन्हे शरीर आदि रूप में परिणत करता है, उसे पर्याप्ति कहते हैं। इस के छह भेद है।

**आहार पर्याप्ति**—जिस शक्ति से जीव आहार योग्य बाह्य पुद्गलो को ग्रहण कर उन को खल और रस रूप में बदलता है।

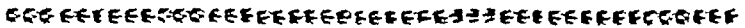
**शरीर पर्याप्ति**—जिस शक्ति के द्वारा जीव रस रूप में परिणत आहार को रक्त, मास, मज्जा और वीर्य आदि धातुओं में बदलता है।

**इन्द्रिय पर्याप्ति**—जिस शक्ति से जीव सात धातुओं को स्पर्शन, रसन आदि इन्द्रियो में बदलता है।

**श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति**—जिस शक्ति के द्वारा जीव श्वास और उच्छ्वास योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है, और छोड़ता है।

**भाषा पर्याप्ति**—जिस शक्ति के द्वारा जीव भाषा योग्य भाषा वर्गणा के पुद्गलो को ग्रहण करके भाषा रूप में परिणत कर के छोड़ता है।





मनः पर्याप्ति—जिम शक्ति के द्वारा जीव मनोयोग्य मनो-वर्गणा के पुद्गलो को ग्रहण करके मन रूप में बदलता और छोडना है ।

किन जीवो के कितनी पर्याप्ति होती है? एकेन्द्रिय जीव के भाषा और मन को छोड कर शेष सभी है । विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक) और असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय के मन को छोडकर शेष समस्त पर्याप्ति है । सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव के छहो पर्याप्ति होती है ।

संसारी जीवो मे ये पर्याप्ति कम से कम चार और अधिक से अधिक छह होती है । कोई भी जीव जब अपर्याप्त-दशा मे मरता है, तब वह कम से कम प्रथम की तीन पर्याप्ति तो अवश्य ही पूरी करता है ।

पर्याप्ति के आधार पर जीवो के दो भेद किये हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त । जिस जीव ने स्व-योग्य पर्याप्ति को पूर्ण कर लिया है, वह पर्याप्त कहा जाता है ।

अपर्याप्त वह है, जो स्व-योग्य पर्याप्ति को पूर्ण नहीं कर पाया है ।



६

## बोल छठा : प्राण दस

१ श्रोत्र बल प्राण	६ मन बल प्राण
२ चक्षुष् बल प्राण	७ वचन बल प्राण
३ घ्राण बल प्राण	८ काय बल प्राण
४ रसन बल प्राण	९ श्वासोच्छ्वास बल प्राण
५ स्पर्शन बल प्राण	१० आयुष्य बल प्राण

### व्याख्या

प्राण अर्थात् जीवन जीने की शक्ति। जिस शक्ति के सयोग से जीव जीवित रहे, और वियोग से मर जाय; वह प्राण है। प्राण जीव के बाह्य लक्षण हैं। प्राणो के बिना जीव जीवित नहीं रहता।

शास्त्र में प्राण के दो भेद हैं—द्रव्य और भाव। जो प्राण केवल ससार अवस्था में ही मिलता है, मुक्त दशा में नहीं; वह द्रव्य प्राण कहा जाता है। द्रव्य प्राण के दश भेद हैं।

पाँच इन्द्रिय, तीन योग और श्वासोच्छ्वास तथा आयुष्य ये सब मिलकर दश द्रव्य प्राण है।

जो प्राण मुक्त दशा में भी आत्मा के साथ रहते हैं, वे भाव प्राण हैं। क्योंकि वे आत्मा के निज स्वरूप हैं। जैसे कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और वीर्य।



यहाँ पर प्रत्येक शब्द के साथ बल लगा है। बल का अर्थ है, शक्ति-विशेष। छूने की शक्ति, चखने की शक्ति, सूँघने की शक्ति, देखने की शक्ति और सुनने की शक्ति। यह इन्द्रिय प्राण है।

विचार करने की शक्ति, बोलने की शक्ति, और चलने-फिरने आदि शारीरिक शक्ति। ये तीन योग रूप प्राण हैं।

जीव जिस शक्ति से बाहर की वायु को अन्दर खींचता है, और अन्दर की वायु को बाहर फेंकता है, वह क्रमशः श्वास और उच्छ्वास है।

जिस शक्ति के अस्तित्व से जीव जीवित रहता है, और जिस के असद्भाव से जीव मर जाता है वह आयुष्य प्राण है। दशों प्राणों में आयुष्य प्राण सब से मुख्य है। इसके अभाव में दूसरे प्राणों का कोई महत्त्व नहीं रहता।

किस जीव में कितने प्राण हो सकते हैं? इसके समाधान में शास्त्र में कहा गया है, कि—

एकेन्द्रिय जीव में चार प्राण हैं—स्पर्शन इन्द्रिय, काय, श्वासो-च्छ्वास और आयुष्य।

द्वीन्द्रिय जीव में छह प्राण हैं—चार पूर्वोक्त तथा रसन-इन्द्रिय और वचन।

त्रीन्द्रिय जीव में सात प्राण हैं—छह पूर्वोक्त और घ्राणेन्द्रिय।

चतुरिन्द्रिय जीव में आठ प्राण हैं—सात पूर्वोक्त और चक्षु-न्द्रिय।





अथवा प्रधान पुद्गलो से बना शरीर । तीर्थङ्कर आदि का शरीर प्रधान पुद्गलो से बनता है । शेष सर्व साधारण जीवों का शरीर स्थूल असार पुद्गलो से बना होता है ।

**वैकिय शरीर**—जिस शरीर से विविध और विशिष्ट प्रकार की क्रियाएँ होती हैं । जैसे एक रूप से अनेक रूप करना । अणु से विराट् करना । दृश्य से अदृश्य करना, आदि ।

**आहारक शरीर**—आहारक लब्धि से बनाया गया शरीर । जीव दया, तीर्थङ्कर की ऋद्धि का दर्शन तथा मशय निवाग्ण आदि विशेष प्रयोजन से चतुर्दश पूर्वधर मुनि अपनी आहारक लब्धि से जो शरीर बनाते हैं, वह आहारक शरीर होता है ।

**तैजस शरीर**—तैजस पुद्गलो से बना हुआ शरीर, शरीर में विद्यमान उष्णता में इस शरीर का अस्तित्व सिद्ध होता है । यह शरीर आहार का पाचन करता है । तपोविशेष से प्राप्त तैजस लब्धि का कारण भी यही शरीर है ।

**कामेण शरीर**—कामेण वर्गणाग्रो से बना शरीर । अथवा जीव के प्रदेशों के साथ लग हुए आठ प्रकार के कर्म पुद्गलो को कामेण शरीर कहते हैं । यह शरीर ही सब शरीरों का बीज है ।

प्रथम तीन शरीरों के अग, उपाग और अंगोपाग होते हैं । तजस और कामेण के नहीं । क्योंकि वे सूक्ष्म शरीर हैं । इन पाँचों में पूर्व से उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं और उत्तर से पूर्व-पूर्व शरीर स्थूल हैं । सब से स्थूल आँदारिक और सब शरीरों में सूक्ष्म शरीर कामेण है । १ ।

८  
बोल आठवाँ : योग पन्द्रह

चार मन के —

- १ सत्य मनो योग
- २ असत्य मनोयोग
- ३ मिश्र मनोयोग
- ४ व्यवहार मनोयोग

चार वचन के —

- १ सत्य वचन योग
- २ असत्य वचन योग
- ३ मिश्र वचन योग
- ४ व्यवहार वचन योग

सात काय के —

- १ औदारिक काय योग
- २ औदारिक-मिश्र काय योग
- ३ वैक्रिय काय योग



- ४ वैक्रिय-मिश्र काय योग
- ५ आहारक-काय योग
- ६ आहारक-मिश्र काय योग
- ७ कर्मण काय योग

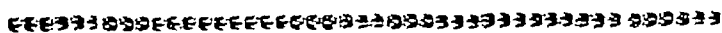
### व्याख्या

भारतीय साहित्य में योग शब्द सुपरिचित एव बहु व्यापक है। सामान्य रूप में योग का अर्थ ध्यान तथा समाधि क्रिया जाता है। 'योग-सूत्र' में चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है।

परन्तु जैन शास्त्रानुसार, प्रस्तुत में योग शब्द का विशेष अर्थ लिया गया है। यहाँ पर मन, वचन और काय के व्यापार को योग कहा गया है। मन, वचन और काय वर्गणा के पुद्गलों की सहायता से, आत्म-प्रदेशों में होने वाले परिस्पन्द को Vibration कम्पन व हलन-चलन को योग कहा गया है।

मुख्य रूप में योग के तीन भेद हैं। विस्तार की अपेक्षा ने उसी के पन्द्रह भेद कर दिये गए हैं।

मन दो प्रकार का है—भाव मन और द्रव्य मन। भाव मन को Subjective mind और द्रव्यमन को Objective mind कहते हैं। द्रव्य मन का सम्बन्ध Brain से है। और भाव मन का सम्बन्ध आत्मा से।



मन की प्रवृत्ति चार ही प्रकार की हो सकती है—कभी सत्य, कभी असत्य, कभी सत्यांसत्य ( मिश्र ) और कभी लोक व्यवहाररूप ।

वचन का अर्थ है भाषा । वह भी चार ही प्रकार की हो सकती है—कभी सत्य, कभी असत्य, कभी सत्यामत्य (मिश्र) और कभी लोक-व्यवहाररूप ।

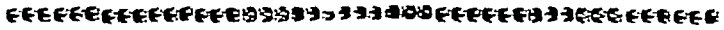
काय का अर्थ है—शरीर । उस के पाच भेद हैं । शरीर का व्यापार सात प्रकार का ही हो सकना है । अधिक नहीं । अतः काय योग के सात भेद किए गए हैं ।

कामंण योग की तरह तैजस योग क्यों नहीं माना गया ? उसके स्वतन्त्र रूप में मानने की आवश्यकता नहीं है । जो व्यापार कामंण शरीर का है , वही तैजस शरीर का है । क्योंकि तैजस और कामंण शरीर सदा सहचर रहते हैं । अतः कामंण योग में ही तैजस योग समाहित हो जाता है ।









व्याख्या

आत्मा के ज्ञान रूप व्यापार को उपयोग कहते हैं । किसी भी वस्तु को सामान्य या विशेष रूप से जान लेना उपयोग है । उपयोग के दो भेद हैं—ज्ञान और दर्शन । पदार्थों के विशेष बोध को ज्ञान या साकारोपयोग कहते हैं । पदार्थों के विशेष धर्म, विशेष गुण और विशेष क्रिया का ज्ञान होना—साकारोपयोग है । पदार्थों के सामान्य बोध को दर्शन या निराकारोपयोग कहते हैं ।

जैन दर्शन में वस्तु सामान्य-विशेषात्मक मानी है । जब चेतना वस्तु के विशेष धर्म को मुख्य रूप में और उस के सामान्य धर्म को गौण रूप में ग्रहण करती है, तो चेतना के उम व्यापार को ज्ञानोपयोग कहा जाता है । परन्तु जब चेतना किसी भी वस्तु के सामान्य धर्म को मुख्य रूप में, और उसके विशेष धर्म को गौण रूप में ग्रहण करती है, तब उसे दर्शनोपयोग कहते हैं, ज्ञान साकार और दर्शन निराकार होता है ।

**मति ज्ञान**—इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला रूपी पदार्थों का ज्ञान । मन से अरूपी पदार्थों का भी परोक्ष ज्ञान किया जा सकता है ।

**श्रुत ज्ञान**—जो ज्ञान श्रुतानुसारी है । जिस से शब्द और और अर्थ का सम्बन्ध जाना जाता है । जो मति ज्ञान के बाद होता है ।

मति और श्रुत का परस्पर सम्बन्ध है । दोनों में कार्य कारण भाव है । मति ज्ञान कारण है और श्रुत ज्ञान कार्य है । दोनों ज्ञान निमित्तावलम्बी होने से परोक्ष हैं ।





FFFFFFFFFFFFFFFFFFFF FFFFFFFFFFFFFFFFFFFFF FFFFFFFFFFFFFFFFFFFFF

है। खान में जो सुवर्ण है, उस का मिट्टी के साथ अनादि सम्बन्ध होने पर भी विशेष शोध-क्रिया के द्वारा जब उस से मिट्टी हटा देते हैं, तब वह शुद्ध सुवर्ण हो जाता है। यही सिद्धान्त कर्म और आत्मा पर भी लागू पड़ता है। कर्म-सहित जीव अशुद्ध और कर्म रहित जीव शुद्ध होता है। साधना के द्वारा जीव शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हो सकता है।

शास्त्र में मुख्य रूप से कर्म के दो भेद हैं—भाव कर्म और द्रव्य कर्म। राग, द्वेष और कपाय आदि भाव कर्म हैं। भावकर्म के निमित्त से कर्म वर्गणा के पुद्गलो की एक विशेष परिणति द्रव्य कर्म है। ऊपर जो कर्म के आठ भेद हैं, वे द्रव्य कर्म हैं।

**ज्ञानावरण कर्म**—आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करने वाला कर्म। जिस प्रकार आँख पर कपड़े की पट्टी लपेटने से वस्तुओं के देखने में रुकावट पड़ती है, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म के प्रभाव से आत्मा को पदार्थों का विशेष बोध करने में रुकावट पड़ती है।

जैसे मघन बादलों में सूर्य के ढक जाने पर भी उसका प्रकाश उतना अवश्य रहता है, कि जिस से दिन-रात का भेद समझा जा सके। वैसे ही कर्मा भी प्रगाढ़ ज्ञानावरण कर्म हो, उस के रहने हुए भी आत्मा में इतना ज्ञान तो अवश्य रहता है, कि जिस से वह जड़ पदार्थों से पृथक् किया जा सके।

**दर्शनावरण कर्म**—आत्मा की सामान्य बोधरूप दर्शन शक्ति को, आत्मा के दर्शन गुण को ढकने वाला कर्म। यह कर्म द्वार-पान के समान है। जैसे द्वार पाल राजा के दर्शन करने में रुका-



वट डालता है, वैसे ही यह कर्म भी पदार्थों का सामान्य बोध करने में रुकावट डालता है

**वेदनीय कर्म**—जो अनुकूल और प्रतिकूल विषयो से उत्पन्न सुख और दुःख रूप में वेदन अर्थात् अनुभव किया जाय। यह कर्म मधु-लिप्त तलवार की धार को चाटने के समान है। चाटते समय क्षण भर को सुख, परन्तु बाद में दुःख होता है। वेदनीय कर्म की भी यही स्थिति है। वेदनीय कर्म का दुःख तो दुःखरूप है ही, किन्तु सुख भी अन्ततः दुःख रूप ही है।

**मोहनीय कर्म**—जो कर्म आत्मा को मोहित करता है, भले-बुरे के विवेक से शून्य बना देता है, जो सदाचार विमुख करता है, वह कर्म मोहनीय है। यह कर्म अन्य कर्मों से प्रबल कर्म है। यह मदिरा के सदृश होता है। जैसे मदिरा पीने वाला विवेक-विकल हो जाता है, वैसे ही मोहनीय के प्रभाव से जीव विवेक-शून्य हो जाता है। यह कर्म आत्मा के श्रद्धान एव चारित्र्य गुण का घात करता है।

**आयुष् कर्म**—जिस कर्म के रहते प्राणी नर, नारकादि रूप से जीता है, और पूरा होने पर मर जाता है। यह कर्म कारागार के समान है।

**नाम कर्म**—जिस कर्म के उदय से जीव कभी नारक, कभी तिर्यञ्च, कभी मनुष्य और कभी देव कहलाता है। अथवा जो कर्म जीव को एकेन्द्रिय आदि नानाविध पर्यायो में परिणत करता है। यह कर्म चित्रकार के समान माना गया है। जैसे चित्रकार नाना चित्र बनाता है, वैसे नाम कर्म भी जीव के नाना रूप बनाता है।





- ८ निवृत्ति बादर सम्पराय गुण स्थान
- ९ अनिवृत्ति बादर सम्पराय गुण स्थान
- १० सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान
- ११ उपशान्त मोह-गुण स्थान
- १२ क्षीण-मोह गुण स्थान
- १३ सयोगी केवली गुण स्थान
- १४ अयोगी केवली गुण स्थान ।

व्याख्या

आत्मा की अशुद्धतम दशा से लेकर शुद्धतम दशा तक, ससार अवस्था से लेकर मुक्ति अवस्था तक और जीव की बद्ध स्थिति से लेकर मुक्त स्थिति तक-पहुँचने के लिए चौदह भूमिकाएँ stages मानी गई हैं, जिन्हें गुण स्थान अर्थात् विकास भूमिकाएँ कहते हैं। गुणस्थान का अर्थ है—आत्मा की स्थिति-विशेष। गुण ( आत्मशक्ति ) के स्थान ( क्रमिक विकास ) को गुणस्थान कहा जाता है।

मिथ्या दृष्टि गुण स्थान—मिथ्या (तत्त्व श्रद्धान के विपरीत) है, दृष्टि जिसकी, वह मिथ्या दृष्टि, उसका गुणस्थान मिथ्या दृष्टि गुणस्थान। यह जीव की निम्नतम दशा है।

सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान—सम्यक्त्व के आस्वाद मात्र से सहित जो दृष्टि वह सास्वादन। सम्यग्दृष्टि, उसका गुणस्थान सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान अनन्तानुबन्धी कपाय के उदय से सम्यक्त्व से पराङ्मुख मिथ्यात्व की ओर भुके हुए जीव की स्थिति।





अतः प्रस्तुत गुण स्थान के सम समय-वर्ती समस्त जीवों के अध्यवसाय भिन्न अर्थात् न्यूनाधिक शुद्धि वाले होते हैं।

**अनिवृत्ति वादर सम्पराय गुण स्थान**—प्रस्तुत गुण स्थान में भी वादर सम्पराय अर्थात् स्थूल कषाय का अस्तित्व रहता है। अतः यह भी वादर-सम्पराय कहलाता है। पूर्ववर्ती अनिवृत्ति शब्द का अर्थ अभिन्नता है। अतः नवम गुणस्थान में जो जीव समसमय-वर्ती होते हैं, उन सबके अध्यवसाय एक समान अर्थात्, तुल्य शुद्धि वाले होते हैं।

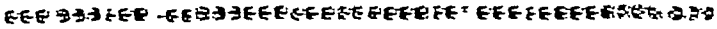
**सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान**—सूक्ष्म रूप में सम्पराय कषाय (मात्र लोभ) है जिसमें वह सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान। इसमें, चार कषायों में से केवल सूक्ष्म लोभ रह जाता है।

**उपशान्त मोह गुण स्थान**—उपशान्त अर्थात् अन्तर्मुहूर्त के लिए शान्त हो गया है, मोह कर्म जिसमें, वह उपशान्त मोह, उसका गुणस्थान, उपशान्तमोह गुणस्थान। इसमें मोह (लोभ) का उपशम होता है, क्षय नहीं।

**क्षीण मोह गुण स्थान**—क्षीण, अर्थात् समूल नष्ट हो गया है, मोह कर्म जिसका, वह क्षीण मोह, उसका गुण स्थान, क्षीण मोह गुण स्थान। इसमें मोह सवथा नष्ट हो जाता है।

**सयोगी केवली गुण स्थान**—योग का अर्थ मन, वचन और वाय का व्यापार है। सयोगी अर्थात् योग युक्त है जो केवली, वह सयोगी केवली, उसका गुण स्थान, सयोगी केवली गुणस्थान, इसमें आत्मा सर्वज्ञ और सर्व-दर्शी हो जाता है।





घ्राण इन्द्रिय के दो विषय—

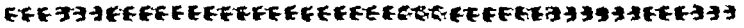
- १ सुगन्ध
- २ दुर्गन्ध

रसन इन्द्रिय के पाँच विषय—

- १ अम्ल (खट्टा) रस
- २ मधुर (मीठा) रस
- ३ कटु (कडवा) रस
- ४ कषाय (कसैला) रस
- ५ तिक्त (तीखा) रस

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषय—

- १ शीत स्पर्श
- २ उष्ण स्पर्श
- ३ रूक्ष स्पर्श
- ४ स्निग्ध स्पर्श
- ५ लघु स्पर्श
- ६ गुरु स्पर्श
- ७ मृदु स्पर्श
- ८ कर्कश स्पर्श



### व्याख्या

इन्द्रिय पांच है, अतः मुख्यतया उनके विषय भी पांच हैं— शब्द, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श । विस्तार की अपेक्षा से इनके तेईस विषय हो जाते हैं । पांच इन्द्रिय के विषय तेईस और विकार दो सौ चालीस होते हैं ।

मसार के समस्त पदार्थ दो विभागों में विभक्त हैं—मूर्त और अमूर्त । जिसमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हो, वह मूर्त, शेष सभी अमूर्त । मूर्त अर्थात् पौद्गलिक पदार्थ ही इन्द्रिय-ग्राह्य हो सकते हैं, अमूर्त नहीं,—जैसे आत्मा आदि ।

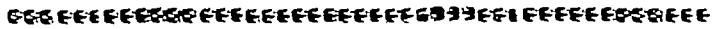
प्रत्येक इन्द्रिय अपने विषय को ही ग्रहण करती है । हमारे के विषय को नहीं । रूप को चक्षुष् ही ग्रहण करती है । घ्राण एव रसन आदि नहीं । सर्वत्र यही क्रम है ।

### विकार

पांच इन्द्रियों के दो सौ चालीस विकार होते हैं और वे इस प्रकार समझने चाहिए—

श्रोत्र इन्द्रिय के तीन विषयों के १२ विकार—जीव शब्द, अजीव शब्द और मिथ्य शब्द । तीन शुभ और तीन अशुभ । इन छह पर राग और छह पर द्वेष । ये १२ विकार हुए ।

चक्षुष् इन्द्रिय के पांच विषयों के ६० विकार—५ अचित्त, ५ अचित्त और ५ मिथ्य । ये १५ शुभ और १५ अशुभ । इन ३० पर राग और ३० पर द्वेष । ये ६० विकार हुए ।



घ्राण इन्द्रिय के दो विषयो के १२ विकार—२ सचित्त, २ अचित्त और २ मिश्र । इन छह पर राग और छह पर द्वेष । ये १२ विकार हुए ।

रसन इन्द्रिय के पांच विषयो के ६० विकार—५ सचित्त, ५ अचित्त और ५ मिश्र । १५ शुभ और १५ अशुभ । ३० पर राग और ३० पर द्वेष । ये ६० विकार हुए ।

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषयो के ६६ विकार—८ सचित्त, ८ अचित्त और ८ मिश्र । २४ शुभ और २४ अशुभ, इस प्रकार ४८ पर राग और ४८ पर द्वेष । ये ६६ विकार हुए ।



१३

### बोल तेरहवाँ : दश प्रकार का मिथ्यात्व

- १ जीव को अजीव समझना मिथ्यात्व
- २ अजीव को जीव समझना मिथ्यात्व
- ३ धर्म को अधर्म समझना मिथ्यात्व
- ४ अधर्म को धर्म समझना मिथ्यात्व
- ५ साधु को असाधु समझना मिथ्यात्व
- ६ असाधु को साधु समझना मिथ्यात्व
- ७ ससार-मार्ग को मोक्ष-मार्ग समझना मिथ्यात्व
- ८ मोक्ष-मार्ग को ससार-मार्ग समझना मिथ्यात्व



-----

है। जीव को जीव और अजीव को अजीव समझना सम्यक्त्व है। परन्तु जीव को अजीव समझना मिथ्यात्व है। इसी प्रकार अजीव को जीव समझना भी मिथ्यात्व है। यथार्थ-दृष्टि सम्यक्त्व है, और विपरीत-दृष्टि मिथ्यात्व है। सम्यक्त्व मोक्ष-हेतु है, और मिथ्यात्व ससार-हेतु।

इसी प्रकार धर्म और अधर्म, साधु और असाधु, ससार और मोक्ष तथा मुक्त और अमुक्त के विषय में भी समझ ले। यदि इनमें यथार्थ दृष्टि है, तो वह सम्यक्त्व है, और यदि इनमें विपरीत दृष्टि है, तो वह मिथ्यात्व है।



१४

बोल चौदहवाँ : नव तत्त्व के ११५ भेद

नव तत्त्व

१ जीव तत्त्व	५ आस्रव तत्त्व
२ अजीव तत्त्व	६ सवर तत्त्व
३ पुण्य तत्त्व	७ निर्जरा तत्त्व
४ पाप तत्त्व	८ बन्ध तत्त्व

९ मोक्ष तत्त्व

व्याख्या

यथार्थ सद्वस्तु को तत्त्व कहते हैं। ये नव मूल तत्त्व हैं। जीव चेतनामय है। अजीव अचेतनामय है। पुण्य सुख देने वाला है। पाप दुःख देने वाला है। आस्रव, शुभ और अशुभ कर्मों के





अजीव तत्त्व के चौदह भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद—

- १ स्कन्ध
- २ देश
- ३ प्रदेश

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद—

- १ स्कन्ध
- २ देश
- ३ प्रदेश

आकाशास्तिकाय के तीन भेद—

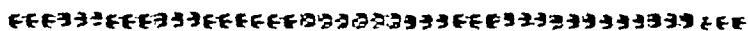
- १ स्कन्ध
  - २ देश
  - ३ प्रदेश
- १ दशर्वाँ      काल

पुद्गलास्तिकाय के चार भेद—

- १ स्कन्ध
- २ देश







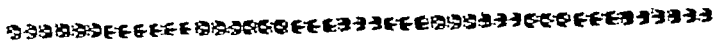
### व्याख्या

पुण्य सुख-रूप होता है। पुण्य क्या है? शुभ योग से बंधने वाला शुभ कर्म। पुण्य से आरोग्य, सम्पत्ति, रूप, कीर्ति, दीर्घ आयुष्य और सुपरिवार आदि सुख के माधन, जीव को उपलब्ध होने हैं।

यहाँ पुण्य के जो नव भेद किए गए हैं, वे वास्तव में पुण्य के भेद नहीं, किन्तु पुण्य के कारण हैं, जो नव विभाग में विभक्त किए गए हैं।

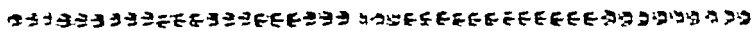
जीव इन नव कारणों से पुण्य का बन्ध कर सकता है। किमी दुःखित को अथवा सदाचारी व्यक्ति को स्थान, शय्या और वस्त्र देने से, शरीर से किसी की सेवा करने से, मधुर एवं हितकर वाणी बोलने से, शुभ विचारों का चिन्तन करने से और किमी पूज्य पुरुष को वन्दन करने से।

पुण्य मनुष्यगति, देवगति, पचेन्द्रिय जाति, शुभ वर्ण, शुभ गन्ध, शुभ रस, शुभ स्पर्श, मौभाग्य, मुस्वर, आदेय, यश आदि ४० प्रकार से भोगा जाता है। पुण्य को बाँधते समय दुःख और भोगते समय सुख मिलना है। आत्म-विक्रम में पुण्य कथंचित् निमित्त है, अतः उपादेय है, परन्तु माधना की उच्च अवस्था में पुण्य भी हेय है।



पाप तत्त्व के अठारह भेद

- १ प्राणातिपात (हिंसा)
- २ मृषावाद (झूठ)
- ३ अदत्तादान (चोरी)
- ४ मैथुन (व्यभिचार)
- ५ परिग्रह (ममताभाव)
- ६ क्रोध
- ७ मान
- ८ माया
- ९ लोभ
- १० राग (मनोज्ञ वस्तु पर स्नेह)
- ११ द्वेष (अमनोज्ञ वस्तु पर द्वेष)
- १२ कलह (क्लेश, झगडा)
- १३ अभ्याख्यान (झूठा कलक लगाना)
- १४ पैशुन्य (दूसरे की चुगली करना)
- १५ पर-परिवाद (अवर्णवाद, निन्दा)
- १६ रति-अरति (शब्दादि मनोज्ञ पर प्रीति, अमनोज्ञ पर अप्रीति)



१७ माया मृषा (कपट-सहित मिथ्या भाषण)

१८ मिथ्यादर्शन शल्य (कुदेव, कुगुरु, और कुधर्म पर श्रद्धा)

व्याख्या

अशुभ योग से बँधने वाले अशुभ कर्म को पाप कहते हैं। क्योंकि वह आत्मा को मलिन बनाता है। पाप के उदय से जीव को दुख और पीडा मिलती है। पाप बाँधते समय सुखकर किन्तु भोगते समय दुःखकर प्रतीत होता है।

अठारह प्रकार से पाप बाधा जाता है, और ज्ञानावरण, दर्शनावरण, असातावेदनीय, मोहनीय, नरक गति, तिर्यचगति, अशुभ वर्ण आदि ८२ प्रकार से भोगा जाता है। पापस्थानों के सेवन से जीव भारी हो जाता है, और नीच गति में जाता है। इनके त्याग से जीव हल्का हो जाता है, और उच्च गति प्राप्त करता है। पाप हेय ही होता है, कभी उपादेय नहीं होता।

पाप तत्त्व के ये अठारह भेद पाप बन्ध के कारण हैं। कारण में कार्य का उपचार मानकर ही पापतत्त्व के भेद बनाए गए हैं।

आम्बव तत्त्व के बीस भेद

पाँच अन्नत—

१ प्राणातिपात

२ मृषावाद







दो अयतना—

- १ भाण्डोपकरण अयतना से लेना, रखना
- २ सूचि कुशाग्र मात्र, अयतना से लेना, रखना ।

व्याख्या

जिन कारणों के द्वारा आत्मा में कर्म मल आता है, वे कारण आस्रव कहलाते हैं । जीव रूप तालाब में, कर्म-रज रूप जल, हिंसा, असत्य आदि आस्रव द्वार रूप नाली से आता रहता है । आस्रव से आत्मा मलिन बनता है क्योंकि आस्रव से कर्मा का निरन्तर मञ्चय होता रहता है ।

हिंसा करना, भूठ बोलना, चोरी करना, व्यभिचार करना और परिग्रह का सचय करना—ये पाँच अव्रत रूप आस्रव है ।

पाँच इन्द्रियो को यदि वश में नहीं रखा जाता, उनका निग्रह नहीं किया जाता, उन पर समय का अकुश नहीं रखा जाता, यदि वे खुली छोड़ दी जाती हैं, तो वे कर्मबन्ध में निमित्त होने से आस्रवरूप है ।

विपरीत श्रद्धान, अचिरति, (असंयम), प्रमाद, कषाय और अशुभ योग—ये पाचो आस्रव रूप है ।

मन, वचन और काय की अशुभ प्रवृत्ति भी आस्रव रूप है । कर्म बन्धन का कारण है ।

नजोदरण, पात्र आदि भाण्डोपकरण और कुश = तृण,

\*\*\*\*\*

सूचि = सूई पाट आदि अन्य कोई भी वस्तु यदि अविवेक से ली जाती है और अविवेक से रखी जाती है, तो यह भी आस्रव है।

इन बीस कारणों से आत्मा कर्मों का सचय करता है, अतः ये आस्रव हैं। आस्रव ससार का कारण है। इससे ससार की वृद्धि होती है।

### सवर के बीस भेद

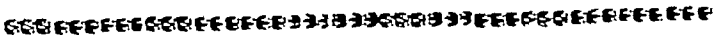
पाच व्रत—

- १ प्राणातिपात विरमण
- २ मृपावाद विरमण
- ३ अदत्तादान विरमण
- ४ अब्रह्मचर्य विरमण
- ५ परिग्रह विरमण

पांच इन्द्रिय—

- १ श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह
- २ चक्षुरिन्द्रिय निग्रह
- ३ घ्राणेन्द्रिय निग्रह
- ४ रसनेन्द्रिय निग्रह
- ५ स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह





शुद्ध एव निर्मल बनता है। क्योंकि सवर की साधना से कर्म मल आत्मा में नहीं आ पाता।

हिंसा से विरति, असत्य से विरति, चोरी से विरति, अन्नह्यचर्य से विरति और परिग्रह से विरति—ये पाँच व्रत रूप सवर हैं। सवर धर्म का कारण है।

पाँच इन्द्रियों का निग्रह करना, उनकी अशुभ प्रवृत्ति को रोकना—यह पाँच इन्द्रियों का निरोधरूप सवर है। निगृहीत इन्द्रिय सवरूप हैं।

यथार्थ श्रद्धान, विरति (व्रत), अप्रमाद, अकषाय और शुभ योग—ये पाँच सवर हैं। क्योंकि इनसे आत्मा की शुद्धि होती है।

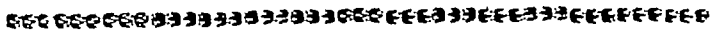
मनोनिरोध, वचन-निरोध और काय-सयम—ये तीनों भी संवर रूप हैं। इन तीनों योगों का शुभत्व सवर है।

यदि तत्त्व-दृष्टि से देखा जाए, तो योग मात्र आस्रव है। भले ही वह शुभ हो, या अशुभ। शुभ योग पुण्यास्रव है और अशुभ योग पापास्रव। यहाँ शुभ योग को जो सवर कहा है, वह अशुभ से निवृत्ति-रूप है। अतः शुभ की शुद्धाश में लक्षणा है।

रजोहरण, पात्र आदि भण्डोपकरण तथा सूई आदि अन्य किसी भी वस्तु को यतना से लेना और यतना से रखना—यह भी सवर है।

इन बीस कारणों से आत्मा आस्रव को रोकता है। अतः ये सवर हैं। सवर मोक्ष का कारण है। इसकी शुद्ध साधना से ससार के बन्धन कट जाते हैं।





निर्जरा दो प्रकार की है—सकाम और अकाम । सवर-पूर्वक निर्जरा सकाम है, और विना विवेक के, विना समय के जो कष्ट सहन किया जाता है, वह अकाम निर्जरा है ।

बद्ध कर्मों का क्षय तप से होता है । अतः निर्जरा की व्याख्या करते हुए प्रस्तुत बोल में अनशन आदि छह प्रकार का बाह्य तप और प्रायश्चित्त आदि छह प्रकार का आभ्यन्तर तप बताया गया है । यह तप कर्म-निर्जरा का हेतु है, कारण है । कारण में कार्य का उपचार करने से यहाँ पर तप को निर्जरा कहा गया है ।

कर्म परमाणुओं का आत्मा से एक देश से दूर हो जाना निर्जरा है, और सर्वथा कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है । देश मुक्ति निर्जरा और सर्व-मुक्ति मोक्ष है ।

बन्ध तत्त्व के चार भेद

- १ प्रकृति बन्ध
- २ स्थिति बन्ध
- ३ अनुभाग बन्ध
- ४ प्रदेश बन्ध

व्याख्या

कर्म-वर्गणा और आत्मा का अन्योन्यानुप्रवेश रूप जो परस्पर सम्बन्ध है, वह बन्ध कहाता है । कषाय और योग से जीव कर्म-पुद्गलो को ग्रहण करता है । नीर और क्षीर की तरह अथवा अग्नि और लौह पिण्ड की तरह कर्म-पुद्गल और आत्म-



प्रदेशो का जो एकीभाव है, उसे बन्ध कहते हैं। जैसे कोई व्यक्ति शरीर पर तेल लगाकर धूल में लेटता है, तो धूल उसके शरीर के चिपक जाती है। इसी प्रकार कर्पाय और योग से आत्म-प्रदेश में जब कम्पन होता है, तब आत्मा के साथ कर्म का बन्ध होता है। बन्ध तत्त्व के चार भेद हैं—

**प्रकृति बन्ध**—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गल में जानावरणादि रूप भिन्न-भिन्न स्वभाव का अर्थात् शक्ति का पैदा होना।

**स्थिति बन्ध**—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गल में अमुक काल तक अपने स्वभाव का परिव्याग न करते हुए जीव के साथ लगे रहने की काल मर्यादा।

**अनुभाग बन्ध**—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म-पुद्गल में तंत्र एव मन्द फल देने की शक्ति। इसको अनुभाव बन्ध और रस बन्ध भी कहते हैं।

**प्रदेश बन्ध**—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म-पुद्गल के परमाणुओं का कम या अधिक होना अर्थात् जीव के माय न्यून-धिक परमाणु वाले कर्म-स्कन्ध का सम्बन्ध होना।

इन चार बन्धों में से प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध योग में होना हैं, और स्थिति-बन्ध तथा अनुभाग बन्ध कर्पाय से होता है।

कर्म बन्ध के पाँच हेतु हैं—मिथ्यात्व, अविश्रुति, प्रमाद, कर्पाय और योग। परन्तु मुख्य दो हैं—कर्पाय और योग।

## मोक्ष तत्त्व के चार भेद

- |   |              |   |                |
|---|--------------|---|----------------|
| १ | सम्यग् ज्ञान | ३ | सम्यक् चारित्र |
| २ | सम्यग् दर्शन | ४ | सम्यक् तप      |

### व्याख्या

नव तत्त्वो मे यह अन्तिम तत्त्व है। संवर और निर्जरा की साधना से आत्मा मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

बन्ध और बन्ध के कारणों का जब अभाव हो जाता है, और जब आत्म-विकास पूर्ण हो जाता है, तब आत्मा की उस सर्वथा और सर्वदा शुद्ध स्थिति को मोक्ष कहा जाता है। आत्म-गुणों का पूर्ण विकास ही वस्तुतः मोक्ष है।

मोक्ष, मुक्ति और निर्वाण—एकार्थक शब्द हैं। कर्म-बद्ध आत्मा का कर्म-मुक्त हो जाना—यह मोक्ष है। मोक्ष आत्मा को एक पूर्ण अखण्ड शुद्ध अवस्था है। जहाँ पूर्णता होती है, वहाँ विभिन्न प्रकार के भेद एवं प्रकार नहीं होते। इसीलिए प्रस्तुत में मोक्ष तत्त्व के भेद बताते हुए उसकी प्राप्ति के चार साधन बताए गए हैं।

इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के उपर्युक्त चार साधन शास्त्र में कहे गए हैं—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र और विवेक पूर्वक तप। जीव इन साधनों से मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

जीव का स्वभाव ऊर्ध्व गमन है। वह जो अधोगमन और तिर्यग् गमन करता है, उसमें जीव के कर्म कारण हैं। जैसे लेप-महिन तुम्बा जल में नीचे बैठ जाना है, परन्तु उस पर से मिट्टी







अथवा इन दोनों का अन्तर्भाव आस्रव और बन्ध में भी किया जा सकता है। शुभ आस्रव और अशुभ आस्रव, तथा शुभ बन्ध और अशुभ बन्ध। इनमें शुभ पुण्य है और अशुभ पाप है।

आस्रव और बन्ध तत्त्व तो स्पष्ट ही पुद्गल हैं, पुद्गल की पर्याय विशेष ही हैं। अतः इनका समावेश अजीव तत्त्व में हो जाता है। इस प्रकार पुण्य और पाप, आस्रव और बन्ध—ये चार तत्त्व अजीव तत्त्व में आ जाते हैं।

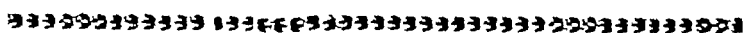
संवर निर्जरा और मोक्ष—ये तीनों जीव की ही पर्याय-विशेष हैं। संवर जीव की आस्रव-निरोध रूप शुद्धि है। निर्जरा भी अशत कर्म-क्षय रूप एक प्रकार की शुद्धि ही है, और मोक्ष तो जीव की पूर्ण शुद्धि का ही नाम है। अतः संवर, निर्जरा और मोक्ष का समावेश जीव तत्त्व में हो जाता है।

अतः संक्षेप में दो ही तत्त्व हैं—जीव और अजीव। शेष इन दोनों का ही विस्तार है।

इन नव तत्त्वों को ज्ञेय, उपादेय और हेय इन तीन भागों में भी विभक्त किया जा सकता है।

जीव और अजीव ज्ञेय हैं। पाप, आस्रव और बन्ध हेय हैं। पुण्य कथंचित् हेय और कथंचित् उपादेय है। संवर, निर्जरा तथा मोक्ष उपादेय हैं। ज्ञेय वह है, जो जानने के योग्य है। उपादेय वह है, जो ग्रहण करने के योग्य है। हेय वह है, जो छोड़ने के योग्य है।





१५

## बोल पन्द्रहवाँ : आत्मा आठ

१ द्रव्य आत्मा	५ ज्ञान आत्मा
२ कषाय आत्मा	६ दर्शन आत्मा
३ योग आत्मा	७ चारित्र आत्मा
४ उपयोग आत्मा	८ वीर्य आत्मा

### व्याख्या

आत्मा एक शाश्वत तत्त्व है। वह अतीत में भी था, वर्तमान में भी है, और भविष्य में भी रहेगा। उसकी न उत्पत्ति है, और न उसका विनाश। फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता, कि उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन होता ही नहीं। द्रव्य से नित्य होकर भी आत्मा पर्याय से अनित्य है, परिवर्तनशील है। जीव के परिणामों का कोई अन्त नहीं है। प्रस्तुत बोल में मुख्यतः आत्माओं की आठ स्थितियों का वर्णन है।

**द्रव्य आत्मा**—आत्मा अमरूपत प्रदेशों का समुदाय है। आत्मा अक्षण्ड है, वह कोई अमरुप प्रदेशों में संयुक्त रूप में निर्मित नहीं हुआ है। प्रदेश कल्पनामात्र बुद्धि-परिकल्पित है। ये प्रदेश आत्मा से पृथक्तरा विभाजित नहीं किए जा सकते।

**कषाय आत्मा**—कषाय चार है—क्रोध, मान, माया और लोभ। कषाय युक्त आत्मा को कषाय आत्मा कहा है। उपशान्त और

धीण कपाय आत्माओ को छोड़कर शेष समस्त ससारी जीवो मे यह आत्मा होती है ।

**योग आत्मा**—योग मन, वचन एव काय का व्यापार है । योग-युक्त आत्मा को योग आत्मा कहते हैं । अयोगी केवली और सिद्धो मे यह आत्मा नही होती । शेष सभी जीव योग वाले हैं ।

**उपयोग आत्मा**—उपयोग अर्थात् ज्ञान और दर्शन । उपयोग-युक्त आत्मा को उपयोग आत्मा कहते हैं । उपयोग आत्मा सिद्ध और ससारी सभी जीवो मे होती है । क्योंकि उपयोग आत्मा का लक्षण है । अत उपयोग-शून्य कोई आत्मा नही हो सकती ।

**ज्ञान आत्मा**—ज्ञान आत्मा का निज गुण है । ज्ञान-युक्त आत्मा को ज्ञान आत्मा कहते हैं । यह आत्मा सभी जीवो में है । परन्तु जब ज्ञान का अर्थ सम्यग्ज्ञान करें, तब यह आत्मा केवल सम्यग्दृष्टि जीवो में रहेगी । क्योंकि मिथ्या दृष्टि मे ज्ञान नही, अज्ञान होता है ।

**दर्शन आत्मा**—दर्शन अर्थात् सामान्य बोध । दर्शन-युक्त आत्मा को दर्शन आत्मा कहते हैं । यह आत्मा सभी जीवो मे होता है । अथवा सम्यग्दर्शन रूप आत्मा सम्यग् दृष्टि जीवो मे ही होती है ।

**चारित्र आत्मा**—चारित्र अर्थात् अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति । चारित्र युक्त आत्मा को चारित्र आत्मा कहते हैं । यह आत्मा विरति-सम्पन्न जीवो मे होता है ।

**वीर्य आत्मा**—वीर्य अर्थात् जीव की शक्ति-विशेष । वीर्य-युक्त आत्मा को वीर्य आत्मा कहते है । यह आत्मा सभी जीवो मे होती है । अन्तर केवल इतना ही है, कि संसारी आत्माओ का वीर्य, सकरण अर्थात् क्रियारूप वीर्य है, और सिद्ध आत्माओ का वीर्य, लब्धि अर्थात् शक्ति रूप वीर्य है ।







तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक—

- १ द्वीन्द्रिय
- २ त्रीन्द्रिय
- ३ चतुरिन्द्रिय

अन्तिम पांच दण्डक—

- १ तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का एक दण्डक
- १ मनुष्य का एक दण्डक
- १ व्यन्तर देव का एक दण्डक
- १ ज्योतिष देव का एक दण्डक
- १ वैमानिक देव का एक दण्डक

व्याख्या

जीव अपनी शुभ और अशुभ प्रवृत्ति के कारण शुभाशुभ कर्मों का सचय करता रहता है। फिर उन शुभ एवं अशुभ कर्मों का फल भोगने के लिए चार गतियों में पारभ्रमण करता है। अतः जहाँ जीव स्वकृत कर्मों का फल भोगता है, उसे दण्ड कहते हैं। अर्थात् कर्म फल या दण्ड भोगने के स्थान को इस बोल में २४ भागों में विभक्त करके उन स्थानों का नाम दण्डक रख दिया गया है।

नरक गति का दण्डक एक, तिर्यञ्च गति के नव, मनुष्यगति का एक, और देवगति के तेरह। इस प्रकार सब मिलाकर चौबीस दण्डक होते हैं।





१७

## बोल गतरहवाँ : लेश्या छह

१	कृष्ण लेश्या	४	तेजो लेश्या
२	नील लेश्या	५	पद्म लेश्या
३	कापोत लेश्या	६	शुक्ल लेश्या

### व्याख्या

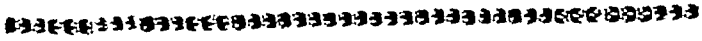
जीव के शुभाशुभ परिणाम को लेश्या कहते हैं। अथवा जिन परिणाम से कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध हो, उसे लेश्या कहते हैं। लेश्या के दो भेद हैं - भाव और द्रव्य। भाव लेश्या विचार रूप और द्रव्य लेश्या पुद्गल रूप होती है।

अथवा लेश्या के दो भेद हैं - धर्म लेश्या और अधर्म लेश्या। पहले को तीन अधर्म लेश्या और अगली तीन धर्म लेश्या। इनको अनुभ लेश्या और शुभ लेश्या भी कहते हैं।

कृष्ण लेश्या —

अतिरोद्र मदा क्रोधी, मत्सरी धर्म-वर्जित ।  
निर्दयी वैर-मयुक्त, कृष्ण-लेश्याऽधिको नर ॥

कृष्ण लेश्या वाले जीव के विचार अत्यन्त क्रूर होते हैं, वह क्रोधी होता है, वह ईर्ष्यालु होता है, उसका जीवन धर्म-शून्य होता है, वह दया रहित होता है, और उसके मन में मदा वैर-विरोध की भावना रहती है।



### नील लेश्या—

अलसो मन्द-बुद्धिश्च, ह्री-लुब्ध पर-वञ्चक ।  
कातरश्च सदा मानी, नील-लेश्याऽधिबो नर ॥

नील लेश्या वाला जीव अलसी, मन्द बुद्धि वाला, कामुक, मायावी, डरपोक और सदा अभिमानी होता है ।

### कापोत लेश्या—

शोकाकुलः सदा रुष्ट, पर निदात्मशंसक ।  
सग्रामे प्रार्थते मृत्यु ; कापोतलेश्याधिकोनरः ॥

कापोत लेश्या वाला जीव शोक से व्याकुल रहता है, सदा क्रोध में भरा रहता है । पर-निन्दा और स्व-प्रशंसा किया करता है, और सग्राम में जाकर कायर बन जाता है, मृत्यु चाहता रहता है ।

### तेजो लेश्या—

विद्यावान् करुणा-युक्तः, कार्याऽकार्यं विचारक ।  
लाभाऽलाभे सदा प्रीत, तेजोलेश्याधिकोनरः ॥

तेजोलेश्या वाला जीव विद्या-प्रेमी होता है, करुणाशील होता है, कर्तव्य और अकर्तव्य में विवेक रखता है, और लाभ तथा अलाभ में सदा प्रसन्न रहता है ।

### पद्म लेश्या—

क्षमावान् निरतस्त्यागे, गुरु-देवेषु भक्तिमान् ।  
शुद्ध-चित्त. सदाऽऽनन्दी; पद्म-लेश्याधिकोनरः ॥



\*\*\*\*\*

पद्म लेश्या वाला जीव क्षमाशील और त्याग-निरत होता है, देव और गुरु की भक्ति करता है, उसका चित्त सदा प्रसन्न रहता है, और वह सदा प्रमुदित रहता है ।

शुक्ल लेश्या—

राग-द्वेष-विनिर्मुक्त., शोक-निन्दा-विवर्जित ।  
परमात्मभावसम्पन्न., शुक्ल-लेश्याधिको नर ॥

शुक्ल लेश्या वाला जीव राग और द्वेष से रहित होता है । अथवा मन्द राग और मन्द द्वेष वाला होता है । वह शोक और निन्दा के वेग से भी परे रहता है । और परम शुक्ल लेश्या वाला अन्तत परमात्म-दशा को प्राप्त कर लेता है । यह आत्मा परम शुद्ध आत्मा होता है ।

★

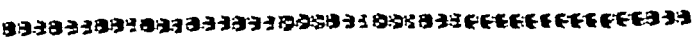
१८

बोल अठारहवाँ : दृष्टि तीन

- १ सम्यग्दृष्टि
- २ मिथ्यादृष्टि
- ३ मिश्रदृष्टि

व्याख्या

यहाँ पर दृष्टि का अर्थ है—दर्शन । ससार में जितने भी जीव हैं, उनमें इन तीन दृष्टियों में से एक न एक दृष्टि अवश्य मिलती है । ये दृष्टियाँ मनुष्य में चारों गतियों के जीवों में उपनव्य होती हैं ।



सम्यग्दृष्टि—मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के क्षय से, उपशम से अथवा क्षयोपशम से आत्मा मे जो एक आत्मानुलक्षी शुद्ध पारणाम उत्पन्न होता है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते है ।

मिथ्या दृष्टि—मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से जीव में जब अदेव मे देव बुद्धि, अधर्म में धर्म बुद्धि और अगुरु मे गुरुबुद्धि हो जाती है, तब उस दृष्टि को मिथ्या दृष्टि कहते हैं ।

मिश्र दृष्टि—मिश्र मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा मे जो सत्यासत्य मिश्रित दोलायमान स्थिति पैदा होती है, उसे मिश्र दृष्टि कहते हैं । इस दृष्टि मे जीव न एकान्त सत्योन्मुख होता है, और न एकान्त असत्योन्मुख । किन्तु सत्य और असत्य से विलक्षण एक भिन्न मिश्रित-सी अवस्था होती है ।



१६

### बोल उन्नीसवाँ : ध्यान चार

- १ आर्त ध्यान
- २ रौद्र ध्यान
- ३ धर्म ध्यान
- ४ शुक्ल ध्यान

व्याख्या

चित्त को एकाग्र करना ध्यान है । अपनी चिन्तन-धारा को अनेक विषयो से समेटकर किसी एक वस्तु या विषय पर एकाग्र कर लेना, स्थिर कर लेना ही ध्यान है ।



ध्यान चार प्रकार का है। पहले दो मसार के कारण है। अतः वे हेय है, त्याज्य है। अन्त के दो मोक्ष के कारण हैं। अतः वे उपादेय है, ग्रहण करने योग्य है।

ध्यान, ध्याता और ध्येय—इसको त्रिपुटी कहते है। ध्यान करने वाला ध्याता होता है। ध्येय अर्थात् जिसका ध्यान किया जाए, जिसका चिन्तन किया जाए। ध्याता ध्यान के द्वारा ध्येय को प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसको ध्यान की साधना कहते है।

ध्यान के दो भेद हैं—अशुभ और शुभ। पहले के दो ध्यान अशुभ है, पिछले दो शुभ है।

आर्त ध्यान—मनोज्ञ एव प्रिय वस्तु के वियोग में और अमनोज्ञ एव अप्रिय वस्तु के सयोग में, चित्त में जो एक प्रकार की अनवरत एकाग्र चिन्तना होती है, उसको आर्तध्यान कहते है।

रींद्र ध्यान—हिंसा में, असत्य में, चोरी में और धन आदि के ममत्वभाव में, मन को एकाग्र करना, मन को जोड़ना, रींद्र ध्यान है। इसमें परिणाम अत्यन्त क्रूर होते हैं। इसमें, जीव के रुद्र अर्थात् भयकर एव निर्दय भाव रहते है, अतः इसको रींद्र ध्यान कहते हैं।

धर्म ध्यान—जिसमें श्रुत और चारित्र्य रूप धर्म का चिन्तन किया जाता है, उसे धर्म ध्यान कहते है। सूत्रार्थ का चिन्तन करना, व्रतों का विचार करना, तथा ममार की ग्रमरना का मनन करना—यह धर्म ध्यान है।

=====

शुक्ल ध्यान—जो ध्यान कर्म-मल को तीव्र गति से दूर करता है, वह शुक्ल ध्यान है। अथवा पर अवलम्बन के विना निर्मल आत्म-स्वरूप का अखण्ड-चिन्तन शुक्ल ध्यान है।

★

२०

बोल बीसवाँ . षड्द्रव्य के तीस भेद

धर्मास्तिकाय के पाँच भेद

- १ द्रव्य से एक
- २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित, अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी
- ५ गुण से चलन गुण, जल मे मछली का दृष्टान्त

अधर्मास्तिकाय के पाँच भेद

- १ द्रव्य से एक
- २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श रहित, अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोकव्यापी

५ गुण से स्थिर गुण, श्रान्त पथिक को छाया का दृष्टान्त

### आकाशास्ति काय के पाँच भेद

- १ द्रव्य से एक
- २ क्षेत्र से लोकालोक-प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित, अरूपी, अजीव, शाश्वत, सर्व-व्यापी
- ५ गुण से अवकाश-दान गुण, दूध-मे वताशे का दृष्टान्त ।

### काल द्रव्य के पाँच भेद

- १ द्रव्य से एक
- २ क्षेत्र से अढाई द्वीप प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित, अरूपी, शाश्वत, अढाई द्वीप वर्ती
- ५ गुण से वर्तना गुण, नये को पुराना करे, नये पुराने कपडे का दृष्टान्त .



### जीवास्तिकाय के पाँच भेद

- १ द्रव्य से अनन्त
- २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित, अरूपी, जीव, शाश्वत, लोकवर्ती
- ५ गुण से उपयोग गुण, चन्द्र की कला का दृष्टान्त

### पुद्गलास्तिकाय के पाँच भेद

- १ द्रव्य से अनन्त
- २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-सहित, रूपी, अजीव, शाश्वत, लोकवर्ती
- ५ गुण से पूरण-गलन गुण, मिलते बिखरते बादल का दृष्टान्त

### व्याख्या

प्रस्तुत बोल में षड् द्रव्य का निरूपण किया गया है। द्रव्य, पदार्थ और वस्तु—ये एकार्थवाची शब्द हैं। जिसमें गुण और पर्याय रहते हैं, उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य का सहभावी धर्म गुण



क्योकि उससे बड़ा कोई पदार्थ नहीं । तत्त्वत आकाश ही पृथ्वी जल, वायु, आदि सभी जीव-अजीव को अपने में अवकाश देता है, आश्रय देता है, जैसे दूध से भरे कटोरे में बताराशा । जिस प्रकार दूध में बताराशा समा जाता है, वैसे ही सब पदार्थ आकाश में समाये हुए हैं ।

आकाश के दो भेद हैं—लोकाकाश और अलोकाकाश । जहाँ तक घर्म और अघर्म आदि हैं, वह लोकाकाश, शेष अलोकाकाश ।

काल—काल अर्थात् समय । जो पुरानी वस्तु को नयी और नयी को पुरानी करता है, वह काल है । समय, पल, घड़ी, दिन और रात—ये सब काल के कार्य हैं । पदार्थों की जो प्रतिक्षण पर्याय बदल रही है, उसका निमित्त अर्थात् सहकारी कारण काल है ।

जीव—चेतनामय तत्व जीव है । उपयोग जीव का लक्षण है । यह लक्षण ससारी जीव और मुक्त जीव सभी में घटित होता है । जीव कभी उपयोग—शून्य नहीं हो सकता । जीव के मुख्य रूप में दो भेद हैं—ससारी और मुक्त । समग्र चैतन्य तत्व का इन दो भेदों में समावेश हो जाता है ।

पुद्गल—जिसमें पूरण, अर्थात् मिलन और गलन अर्थात् पृथक् भवन का स्वभाव है, वह पुद्गल है । जो मिलता है, विच्छुडता है, वह पुद्गल है । जिसमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श—ये चार गुण हो, वह पुद्गल है । 'पुद्' और 'गल्' इन दो धातुओं के संयोग से पुद्गल शब्द बना है । जिसका अर्थ है सरुलेष और त्रिश्लेष । ईट, पत्थर, लकड़ी, मिट्टी आदि—ये सब पुद्गल हैं ।

इन षड् द्रव्यों में एक काल को छोड़ कर शेष सभी द्रव्य अस्ति-काय-रूप हैं । अस्ति अर्थात् प्रदेश, काय अर्थात् समूह ।



१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०२१२२२३२४२५२६२७२८२९३०३१३२३३३४३५३६३७३८३९४०

ये पाँचो द्रव्य, प्रदेश-समूहात्मक हैं। अतः ये अस्तिकाय कहे जाते हैं। परन्तु काल के प्रदेश नहीं होते। अतः काल अस्तिकाय नहीं है। अस्तिकाय द्रव्य पाँच है—धर्म, अधर्म, आकाश, जीव और पुद्गल।

✦

२१

चोल इक्कीसवाँ : राशि दो

१ जीव राशि

२ अजीव राशि

व्याख्या

राशि का अर्थ है—समूह। प्रस्तुत वोल में संसार की समस्त वस्तु—चेतन और अचेतन—दो समूहों में विभक्त हैं—जीव राशि और अजीव राशि। ममार में कोई वस्तु ऐसी शेष नहीं रह जाती, जो इन दो राशि में न आ सके। ससारी से लेकर सिद्ध तक, और सिद्ध से लेकर ससारी जीव तक, समस्त चेतनामय शक्तियों का समावेश हो जाता है—जीव राशि में। धर्म, अधर्म, आदि समस्त जड़ तत्त्वों का समावेश हो जाता है—अजीव राशि में।

जीवराशि—जो चेतना-शक्ति से युक्त हो, वह जीव है। जीवों की राशि को, जीवों के समुदाय को जीव राशि कहते हैं। जीव के दो भेद हैं—बद्ध और मुक्त। जीव राशि में दोनों प्रकार के जीवों का समावेश हो जाता है।



अजीवराशि—चेतना रहित जितने भी तत्त्व हैं, उनके समुदाय को अजीव राशि कहते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल—ये सब अजीव राशि में आ जाते हैं।



२२

बोल बाईसवाँ : श्रावक के बारह व्रत

पाँच अणुव्रत—

- १ अहिंसा अणुव्रत
- २ सत्य अणुव्रत
- ३ अस्तेय अणुव्रत
- ४ ब्रह्मचर्य अणुव्रत
- ५ अपरिग्रह अणुव्रत

तीनगुण व्रत—

- १ दिशा परिमाण व्रत
- २ भोगोपभोग परिमाण व्रत
- ३ अनर्थदण्ड विरमण व्रत

चारशिक्षा व्रत—

- १ सामायिक व्रत
- २ देशावकाशिक व्रत



इसी प्रकार वह श्रावक स्थूल असत्य को, स्थूल स्तेय को, स्थूल अन्नह्य को और स्थूल परिग्रह को छोड़ सकता है, सूक्ष्म का त्याग नहीं कर सकता। क्योंकि वैसा करने पर उसका गृहस्थ जीवन चल सकना कठिन है। चतुर्थ व्रत के रूप में यदि वह पुरुष है, तो स्व-दार-सन्तोष-व्रत और यदि वह नारी है, तो स्व-पति-सन्तोष-व्रत ग्रहण करता है। पञ्चम व्रत के रूप में वह अपने परिग्रह का परिमाण निर्धारित करता है।

तीन गुणव्रत—गुण-व्रत का अर्थ है—अहिंसा आदि पाँच मूल व्रतों को पुष्ट करने वाले, और उनमें अभिवृद्धि करने वाले नियम।

चार दिशा, चार विदिशा और ऊर्ध्वदिशा तथा अधोदिशा— इन दश दिशाओं का परिमाण निर्धारित करना, ताकि सीमा से बाहर, मर्यादा से बाहर गमन और आगमन न हो। यह दिशा परिमाण गुण व्रत है, इस में क्षेत्र की मर्यादा की जाती है।

उपभोग अर्थात् एक बार भोग के काम में आने वाली खाने-पीने आदि की वस्तु और परिभोग अर्थात् बार-बार भोग के काम में आने वाली पहनने-ओढ़ने आदि की वस्तु—इनकी मर्यादा करना। जैसे आनन्द श्रावक ने छद्बीस बोल की मर्यादा की थी। यह उपभोग परिभोग परिमाण गुण व्रत है।

श्रावक प्रयोजन के लिए तो हिंसा आदि करता है, परन्तु विना प्रयोजन के हिंसा आदि का उसको परित्याग होता है। अतः अनर्थदण्ड, का, अर्थात् विना प्रयोजन के हिंसा आदि का त्याग, अनर्थदण्ड-विरमण गुणव्रत है।

चार शिक्षा व्रत—

शिक्षा का अर्थ है, साधु-जीवन-का अभ्यास। धीरे-धीरे

\*\*\*\*\*

साधु-जीवन योग्य साधना की ओर अग्रसर होना, इस शिक्षा व्रत का मुख्य उद्देश्य है।

नित्य प्रति उभय काल में सामायिक करना, सामायिक शिक्षा व्रत है। दिशाव्रत में जो क्षेत्र-मर्यादा की थी, उमको और अधिक नीमित करना, देशावकाशिक शिक्षा व्रत है। पर्व दिवसों में पौषव व्रत एवं दयाव्रत करना पाँपघ शिक्षा व्रत है। और द्वार पर आए साधु, श्रावक, सम्यग्दृष्टि आदि अतिथि को सम्मान पूर्वक यथाशक्ति दान देना, अतिथि सविभाग शिक्षा व्रत है। ये चार शिक्षा व्रत हैं। इस प्रकार श्रावक के चारह व्रत हैं।



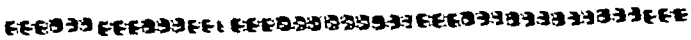
२३

बोल तेईसवाँ : साधु के पाँच महाव्रत

- १ अहिंसा महाव्रत
- २ सत्य महाव्रत
- ३ अस्तेय महाव्रत
- ४ ब्रह्मचर्य महाव्रत
- ५ अपरिग्रह महाव्रत

व्याख्या

साधु को शास्त्र में 'श्रमण' कहा गया है। अतः साधु-धर्म को 'श्रमण-धर्म' कहना उचित ही है। श्रावक धर्म से प्रागे की कोटि श्रमण-धर्म की है। साधु होने के लिए केवल बाह्य रूप बदल



लेना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसके लिए जीवन को ही बदलना पड़ता है। बाने के साथ बान भी बदलनी पड़ती है, तभी सच्ची साधुता प्राप्त होती है।

ससार में पाँच महापाप हैं—हिंसा, असत्य, स्तेय (चोरी), अब्रह्मचर्य और परिग्रह (आसक्ति)।

साधु इन पाँचो महापापो का त्याग तीन करण और तीन योग से करता है। करण का अर्थ है—कृत, कारित और अनुमत। अर्थात् करना, कराना और अनुमोदन करना। योग का अर्थ है—मन, वचन और काय।

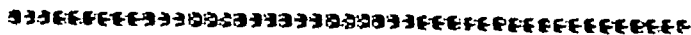
साधु इन पाँचो महापापो को न स्वयं करता है, न दूसरो से करवाता है, और न करने वालो का अनुमोदन करता है—मन से, वचन से और काय से। अतः साधु के इन व्रतो को शास्त्र मे महाव्रत कहा गया है।

महाव्रत का अर्थ है—बड़ी प्रतिज्ञा, महान प्रतिज्ञा, पूर्ण प्रतिज्ञा। उसमें किसी भी प्रकार की स्थूल एव सूक्ष्म की छूट नहीं होती।

साधु पूर्ण अहिंसा, पूर्ण सत्य, पूर्ण अस्तेय, पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्ण अपरिग्रह का परिपालन करता है। अतः उसकी प्रतिज्ञा को महाव्रत कहना उचित ही है।







- ६ कराऊँ नहीं वचन से, काय से
- ७ अनुमोदूँ नहीं मन से, वचन से
- ८ अनुमोदूँ नहीं मन से, काय से
- ९ अनुमोदूँ नहीं वचन से, काय से

अक १३ भग तीन—एक करण, तीन योग से कथन—

- १ करूँ नहीं मन से, वचन से, काय से
- २ कराऊँ नहीं मन से, वचन से, काय से
- ३ अनुमोदूँ नहीं मन से, वचन से काय से

अक २१ भग नव—दो करण, एक योग से कथन—

- १ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, मन से
- २ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, वचन से
- ३ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, काय से
- ४ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
- ५ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
- ६ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से
- ७ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
- ८ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
- ९ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से







अक ३२ भग तीन—तीन करण, दो योग से कथन—

१ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मनसे, वचनसे

२ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मनसे, कायसे

३ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचनसे कायसे

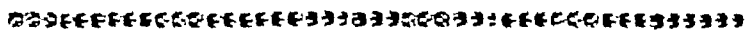
अक ३३—भग एक-तीन करण, तीन योग से कथन—

करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं,

मन से, वचन से, काय से ।

### सेरो-यन्त्र

अक	११	१२	१३	२१	२२	२३	३१	३२	३३
भग	६	६	३	६	६	३	३	३	१
करण	१	१	१	२	२	२	३	३	३
योग	१	२	३	१	२	३	१	२	३
सर्व भंग	६	१८	२१	३०	३६	४२	४५	४८	४६
८१ सेरी मे से रुकने वाली सेरी क्रमशः									
	६	१८	२७	१८	३६	५४	२७	५४	८१



### व्याख्या

शास्त्र में दो प्रकार की परिज्ञा अर्थात् बुद्धि कही गई है— ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञा । ज्ञपरिज्ञा से पदार्थों का स्वरूप जाना जाता है, कि कौन पदार्थ कैसा है ? हेय है या उपादेय ? और प्रत्याख्यान परिज्ञा से हेय वस्तु का त्याग और उस की पद्धति का विचार है । प्रस्तुत वोल में प्रत्याख्यान-परिज्ञा का स्वरूप बताया है, कि हेय वस्तु का त्याग कैसे करना चाहिए ?

पाप का परित्याग जीवन की साधारण घटना नहीं है, कि किसी हेय वस्तु को छोड़ दिया और वम त्याग हो गया । इस प्रकार के त्याग तो मिथ्यादृष्टि जीव भी करते रहते हैं । किन्तु वह त्याग प्रत्याख्यान कोटि में नहीं आता । प्रत्याख्यान कोटि के लिए आवश्यक है, कि कृत, कारित और अनुमत तथैव मन, वचन और काय के स्वरूप का तथा इनके पारस्परिक सम्बन्धों का गम्भीरता में विचार किया जाए । यही विचार प्रस्तुत वोल में किया गया है ।

भग का अर्थ है, विकल्प, प्रकार, एवं विभाग रूप रचना-विशेष । इस अर्थ के अनुसार प्रत्याख्यान के ४६ भग हैं । अन्तिम ३३ के अंक का भंग पूर्ण है, क्योंकि वह नवकोटि प्रत्याख्यान है । उनमें किसी भी प्रकार के अप्रत्याख्यान के अंश की छूट नहीं है । शेष भग अपूर्ण हैं, अर्थात् उनमें किसी न किसी रूप में अप्रत्याख्यानान्नाश की छूट रह जाती है ।



२५

## बौद्ध पञ्चीसर्वाः चारित्र्य पाँच

- १ सामायिक चारित्र्य
- २ छेदोपस्थापन चारित्र्य
- ३ परिहार विशुद्धि चारित्र्य
- ४ सूक्ष्म-सम्पराय चारित्र्य
- ५ यथाख्यात चारित्र्य

व्याख्या

आत्मा को निज स्वरूप में स्थित रखने का प्रयत्न चारित्र्य है। चारित्र्य, विरति, संयम, और सवर ये सब एकार्थक शब्द हैं। चारित्र्य का अर्थ है—अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति। तत्त्वत आस्रव के निरोध को चारित्र्य कहा जाता है।

शास्त्रीय भाषा में चारित्र्य मोहनीय कर्म के क्षय से, उपशम से और क्षयोपशम से होने वाले विरति परिणाम को चारित्र्य कहते हैं। अथवा आत्मा का सावद्य योग से निवृत्त होकर निरवद्य योग में प्रवृत्त होना भी चारित्र्य कहा जाता है। चारित्र्य के सामायिक आदि पाँच भेद हैं।

सामायिक चारित्र्य—सामायिक अर्थात् सम-भाव। सम भाव को साधना को सामायिक चारित्र्य कहते हैं। अथवा सावद्य





परिहार विशुद्धि चारित्र—जिस चारित्र मे परिहार नामक विशेष तप किया जाता है, उसे परिहार विशुद्धि चारित्र कहते है । परिहार तप से आत्मा की विशेष शुद्धि होती है । परिहार अर्थात् सघ से पृथक् होकर विशिष्ट तपस्या से आत्मा की शुद्धि करना, परिहार विशुद्धि है ।

परिहार नामक तप की विधि सक्षेप मे इस प्रकार है—

“नव साधुओ का गण परिहार तप प्रारम्भ करता है । इनमे से चार तप करते हैं, और चार उनकी वैयावृत्य (सेवा) करते हैं, तथा एक उनके गुरु (निर्देशक) रूप मे रहता है ।

पहले चार साधु छह मास तक उपवास, बेला, तेला, चौला, पचौला, तथा आयविल आदि तप करते हैं । फिर सेवा करने वाले छह मास तक तप करते हैं, और तप करने वाले सेवा करते हैं । फिर गुरु पद पर रहा हुआ साधु भी छह मास तक तप करता है । इस प्रकार अठारह मास में इस परिहार तप का कल्प पूर्ण होता है ।

सूक्ष्म सम्पराय चारित्र—सम्पराय का अर्थ कषाय होता है । कषाय चार हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ । परन्तु इस चारित्र मे केवल सूक्ष्म सज्वलन रूप लोभ कषाय ही शेष रह जाता है । अत इसको सूक्ष्म सम्पराय चारित्र कहते हैं । यह चारित्र दशवें गुणस्थान का है ।



